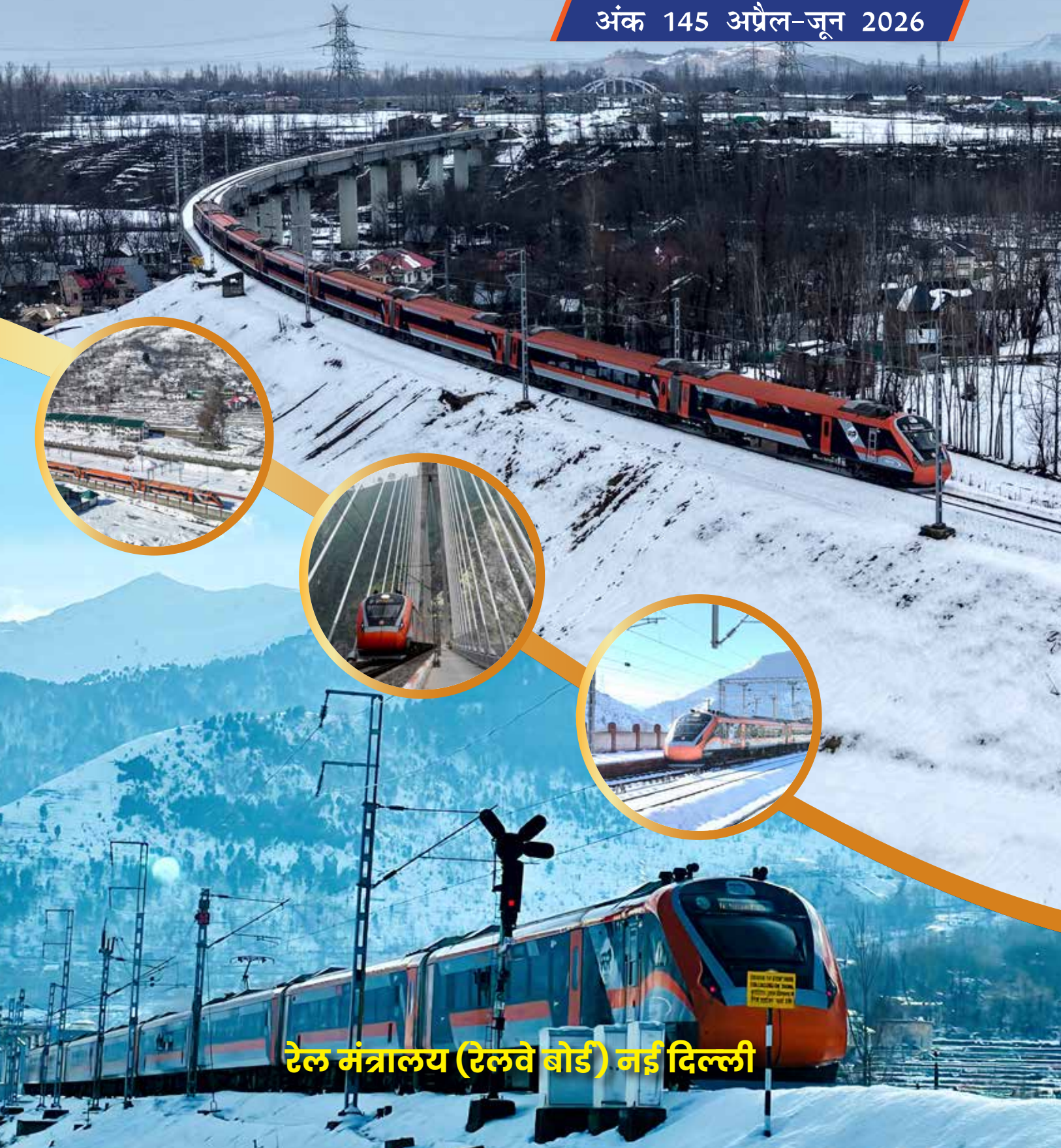




रेल राजभाषा

अंक 145 अप्रैल-जून 2026



रेल मंत्रालय (रेलवे बोर्ड) नई दिल्ली

संसदीय राजभाषा समिति की दूसरी उपसमिति द्वारा रेल कार्यालयों के निरीक्षण की झलकियां





निदेशक राजभाषा की कलम से...



प्रिय पाठकों,

खिजाँ के रुत में गुलाब लहजा बना के रखना कमाल ये है...

बात मुबारक सिद्दीकी साहब की एक गजल की इस पंक्ति से शुरु करना बेहद जरूरी है। क्योंकि मन बहुत ही संवेदनशील, भावुक एवं प्रतिक्रियात्मक होता है। हर दिन, हर पल हमारी संवेदनाएँ बदलती रहती हैं और ये बदलाव हमारी सोच, विचार एवं कार्य-निर्वाह पर अपना गहरा असर छोड़ते हैं। सामान्य मनुष्य संवेदनाओं की उछल-कूद में अक्सर फँस जाता है या ये संवेदनाएँ उसे फँसा लेती हैं। फिर तो 'मनुष्य परिस्थितियों का दास' है वाली बात चरितार्थ होने लगती है और हम वही करने लगते हैं, जैसा परिस्थितियाँ हमसे करवाती हैं। इस तरह से हम अपने स्वयं के व्यक्तित्व से विरत हो जाते हैं और एक आम जन के रूप में परिणत होकर रह जाते हैं। इसीलिए कहा जाता है कि हमारे धैर्य, साहस, हिम्मत और चैतन्य की परीक्षाएँ विकट परिस्थितियाँ लेती हैं और हमें पास अथवा फेल घोषित करती हैं। जो व्यक्ति इन विकट परिस्थितियों की परीक्षा पास कर लेता है, वही सिकंदर कहलाने का पात्र होता है।

भारतीय चिंतन में स्थितप्रज्ञता की एक धारणा है, शायद मुबारक सिद्दीकी साहब की पंक्तियाँ भी उसी ओर इशारा कर रही हैं। अर्थात् मुश्किल समय में जब कोई अपना धैर्य, शालीनता और मनोबल नहीं खोता है, वास्तव में वही व्यक्ति अपने जीवन को सार्थक करने, अपने कर्मों को पूरा करने और अपने दायित्वों का निर्वाह करने में कमाल कर सकता है। हालाँकि उसमें समत्व का भाव होना चाहिए। उसमें कर्तव्यनिष्ठा और आत्मानुशासन का बोध होना चाहिए और आत्म-साक्षात्कार की क्षमता विकसित होनी चाहिए।

भारतीय रेल का यह विस्तृत व जटिल तंत्र यूँ ही नहीं विकसित हुआ है, बल्कि इसके लिए अनेक लोगों ने अपनी कर्तव्यनिष्ठा, आत्मानुशासन और आत्म-साक्षात्कार के आधार पर प्रयास किया है। आज भारतीय रेल यदि दुर्गम पहाड़ियों, घने जंगलों, वीरान रेगिस्तानों, पथरीले सुरंगों और हरे-भरे खेत-खलिहानों में छुक-छुक करते और सीटी बजाते दौड़ती है, तो इसके पीछे उन कर्मठ अभियंताओं, कामगारों और अनेक सहयोगियों की स्थितप्रज्ञता ही कारण रही है। उनके रास्ते में अनेक बाधाएँ आई होंगी, उन्हें व्यक्तिगत तौर पर नुकसान भी पहुँचा होगा। लेकिन उन्होंने अपना 'गुलाब लहजा बना के रखा' और आज आम जनमानस भारतीय रेल की सुविधाओं से लाभान्वित है।

भारतीय रेल में राजभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार एवं संवर्धन का काम भी अपना एक अलग मायना रखता है। जैसे भारतीय रेल देश की सभी भौगोलिक विकटताओं के बावजूद भी अपने सभी नागरिकों की सुविधाओं का ध्यान रखने का प्रयास कर रही है, वैसे ही भारतीय रेल का राजभाषा विभाग भी देश की भाषायी अस्मिता और उसकी पारंपरिक विविधता का ध्यान रखते हुए एकता और अखंडता के लिए काम कर रहा है। राजभाषा के कर्मी हिंदी के विकास अथवा प्रचार-प्रसार का काम ही नहीं करते, बल्कि 'एक भारत - श्रेष्ठ भारत' के घोष को स्पंदित करने का काम भी करते हैं। इस काम में परिस्थितियाँ विपरीत होंगी, बाधाएँ आएंगी और विफलताओं से रूबरू होना भी होगा, पर 'गुलाब लहजा' बनाए रखना होगा।

हर्ष का विषय है कि 'रेल राजभाषा' पत्रिका का 145वाँ अंक आपके हाथों में सौंपते हुए गर्व का अनुभव कर रही हूँ कि पत्रिका का प्रकाशन उत्तरोत्तर आगे बढ़ रहा है और हम इसके लेखकों एवं लेखिकाओं की सकारात्मक भावनाओं को समेट कर पाठकों तक पहुँचा रहे हैं और देश की भाषायी अस्मिता को मजबूत करने का प्रयास कर रहे हैं। हमारे इस प्रयास में आपकी प्रतिक्रियाएँ, सुझाव और कटु आलोचनाएँ बहुत मददगार साबित होंगी। आशा है, आप हमारी भावनाओं को हृदयंगम करेंगे और पत्रिका के निखार के लिए अपनी प्रतिक्रियाओं से हमसे जुड़ेंगे।

बी सुगुणा

(डॉ. बी. सुगुणा)

निदेशक, राजभाषा, रेलवे बोर्ड

संरक्षक

श्री सतीश कुमार
अध्यक्ष एवं मुख्य कार्यपालक अधिकारी,
रेलवे बोर्ड

परामर्शदाता

श्री आर. राजगोपाल
महानिदेशक (मानव संसाधन)

मार्गदर्शक

श्री प्रवास पी. पांडे
अपर सदस्य (मानव संसाधन)

सलाहकार

श्रीमती विनीता वर्मा
कार्यपालक निदेशक, स्था. (श्रम कानून)

प्रधान संपादक

डॉ. वी. सुगुणा
निदेशक, राजभाषा

उप संपादक

श्री अमन शर्मा
सहायक निदेशक
हिंदी (समिति) एवं हिंदी (पत्रिका)

संपादन सहयोग

श्री अखिलेश कुमार
कनिष्ठ अनुवाद अधिकारी
श्री राजेश रंजन
कनिष्ठ सचिवालय सहायक

पता :-

राजभाषा निदेशालय,
कमरा नं. 301, पत्रिका अनुभाग
कॉफमो कार्यालय परिसर
तिलक ब्रिज, नई दिल्ली-110002
ई-मेल:
patrikahindi@gmail.com

क्र.सं.	शीर्षक	लेखक/कवि	पृष्ठ
1	रेशम के धागों में बसी भारतीय संस्कृति	विभा कनन	5
2	तारादेवी, शिमला की आध्यात्मिक यात्रा-एक शांतिदायक अनुभव	डॉ. उमेश प्रताप वत्स	8
3	केरल में हिंदी	अनामिका अनु	10
4	मैं स्त्री हूँ (कविता)	संतोष कुमार झा	13
5	अखिल रेल हिंदी प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता - एक यात्रा संस्मरण	संजय प्रसाद	14
6	जिंदगी कुछ तो बता, तेरा इरादा क्या है (कविता)	मोहम्मद अकरम	16
7	रमेश पोखरियाल निशंक जी की कहानी "कुछ नहीं जिंदगी"	डॉ. बरुण कुमार	17
8	नजरिया (कविता)	सूर्या मिश्रा	18
9	रेलवे बोर्ड में राजभाषा कार्यान्वयन समिति की 158वीं बैठक की झलकियां		19
10	संसदीय राजभाषा समिति की दूसरी उपसमिति द्वारा रेल कार्यालयों के निरीक्षण की झलकियां		20
11	रेलवे बोर्ड में आयोजित जयन्ती कार्यक्रम की झलकियां		23
12	भारतीय रेल वित्त प्रबंधन संस्थान, सिकंदराबाद में आयोजित अखिल रेल हिंदी प्रश्नोत्तरी कार्यक्रम-2025 की झलकियां		24
13	आधुनिक रेल डिब्बा कारखाना, रायबरेली में आयोजित अखिल रेल हिंदी नाट्योत्सव-2025 की झलकियां		25
14	रेलवे बोर्ड में आयोजित पुस्तक चर्चा कार्यक्रम की झलकियां		26
15	हिमालय के देश में संस्कृतियों का संगम	डॉ. विपिन पवार	27
16	चक्का सीटी और एक डिब्बे में कैद वो सात दिन	रेणु गुप्ता	29
17	सपने (कविता)	अंजलि	35
18	छुक-छुक में बसता हिंदुस्तान (कविता)	प्रवीण कुमार	35
19	बीजक की यात्रा	जया अग्रवाल	36
20	भारत पर किसी का दबाव नहीं है	अभिषेक श्रीवास्तव	38
21	महादेवी : छायावाद की चार स्तंभों में एक	अविनाश प्रसाद	39
22	परिवार में पिता का महत्व	अभिषेक कुमार प्रसाद	41
23	कर्तव्य परायणता	श्यामलाल शर्मा	42



रेशम के धागों में बसी भारतीय संस्कृति

भारत विविधताओं का देश है। यहाँ की संस्कृति, परंपराएँ, कला, वेशभूषा और जीवन शैली विश्वभर में अपनी विशिष्ट पहचान रखती हैं। भारतीय सभ्यता की इस रंगीन तस्वीर में यदि किसी वस्तु ने सौंदर्य, शालीनता और समृद्धि का प्रतीक बनकर अपनी अलग पहचान बनाई है, तो वह है - रेशम। रेशम केवल एक वस्त्र नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति का जीवंत प्रतीक है। इसके धागों में इतिहास की गरिमा, परंपराओं की सुगंध, लोकजीवन की आत्मा और भारतीय नारी की गरिमा समाई हुई है। भारत में रेशम का संबंध केवल फैशन या व्यापार तक सीमित नहीं रहा, बल्कि यह सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन का अभिन्न हिस्सा बन चुका है।

प्राचीन काल से ही भारत में रेशमी वस्त्रों का विशेष महत्व रहा है। मंदिरों की देव प्रतिमाओं से लेकर राजाओं-महाराजाओं के परिधानों तक, विवाह समारोहों से लेकर धार्मिक अनुष्ठानों तक- रेशम हर जगह अपनी

गरिमामयी उपस्थिति दर्ज कराता है। इसकी कोमलता और चमक केवल शरीर को नहीं सजाती, बल्कि भारतीय संस्कृति की आत्मा को भी अभिव्यक्त करती है।

जब राजमहलों से गाँवों तक फैला रेशम का वैभव

भारत में रेशम का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। वैदिक साहित्य, रामायण, महाभारत और बौद्ध ग्रंथों में रेशमी वस्त्रों का उल्लेख मिलता है। प्राचीन राजदरबारों

में रेशमी परिधान सम्मान और वैभव के प्रतीक माने जाते थे।

भारत का संबंध ऐतिहासिक “रेशम मार्ग” से भी रहा है, जिसके माध्यम से भारत, चीन, मध्य एशिया और यूरोप के बीच व्यापारिक एवं सांस्कृतिक आदान-प्रदान होता था। इस मार्ग ने केवल व्यापार को ही नहीं बढ़ाया, बल्कि सभ्यताओं को जोड़ने का कार्य भी किया। भारतीय रेशम की गुणवत्ता और कलात्मकता विश्वभर में प्रसिद्ध थी।



मुगल काल में रेशम उद्योग को विशेष संरक्षण मिला। उस समय बनारस, मुर्शिदाबाद, मैसूर और कांचीपुरम जैसे नगर रेशमी वस्त्रों के प्रमुख केंद्र बने हुए थे। राजघरानों की पोशाकों में सोने-चाँदी की जरी से सजे रेशमी वस्त्र शान और प्रतिष्ठा का प्रतीक माने जाते थे।



हर प्रदेश में बिखरे रेशम के रंग

भारतीय संस्कृति में वस्त्र केवल तन ढकने का माध्यम नहीं, बल्कि पहचान, परंपरा और सामाजिक गरिमा का प्रतीक हैं। रेशम इसी सांस्कृतिक चेतना का सुंदर स्वरूप है। भारत के विभिन्न राज्यों में रेशम से बनी साड़ियाँ और परिधान स्थानीय संस्कृति को अभिव्यक्त करते हैं।

उत्तर भारत की बनारसी साड़ी, दक्षिण भारत की कांचीवरम साड़ी, असम की मूंगा सिल्क, कर्नाटक



का मैसूर सिल्क और पश्चिम बंगाल की बालूचरी साड़ियाँ भारतीय कला और परंपरा के अनुपम उदाहरण हैं। इन वस्त्रों में केवल धागों का संयोजन नहीं होता, बल्कि लोककथाएँ, धार्मिक प्रतीक, प्राकृतिक दृश्य और भारतीय जीवन दर्शन भी बुना होता है।

भारतीय विवाहों में रेशम का विशेष महत्व है। दुल्हन का रेशमी परिधान शुभता, समृद्धि और सम्मान का प्रतीक माना जाता है। त्योहारों, पूजा-पाठ और पारिवारिक समारोहों में भी रेशमी वस्त्र पहनने की परंपरा सदियों से चली आ रही है।

भारतीय नारी की गरिमा और रेशम का रिश्ता

भारतीय नारी की सुंदरता और गरिमा का वर्णन रेशमी वस्त्रों के बिना अधूरा माना जाता है। रेशम की साड़ी भारतीय स्त्री के सौंदर्य को एक विशेष गरिमा प्रदान करती है। इसकी कोमलता, चमक और कलात्मकता स्त्री की शालीनता और आत्मविश्वास को अभिव्यक्त करती है।

भारतीय परिवारों में रेशमी साड़ियाँ केवल वस्त्र नहीं होतीं, बल्कि भावनात्मक धरोहर भी होती हैं। माँ की शादी की साड़ी पीढ़ियों तक संभालकर रखी जाती है। यह केवल कपड़ा नहीं, बल्कि परिवार की स्मृतियों और परंपराओं का हिस्सा बन जाती है।

आज भी कई महिलाएँ विशेष अवसरों पर रेशमी वस्त्र पहनना गर्व की बात मानती हैं। बदलते फैशन के दौर में भी रेशम का आकर्षण कम नहीं हुआ है। आधुनिक डिजाइनों और पारंपरिक कला के मेल ने रेशमी वस्त्रों को और अधिक लोकप्रिय बना दिया है।

गाँवों की मेहनत से जन्म लेती रेशम की चमक

रेशम उद्योग भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण आधार है। लाखों परिवार प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से इससे जुड़े हुए हैं। रेशम उत्पादन में महिलाओं की भागीदारी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। गाँवों में छोटे स्तर पर रेशम की खेती और बुनाई का कार्य अनेक परिवारों को रोजगार प्रदान करता है।

शहतूत की खेती, रेशम के कीड़ों का पालन, धागा निर्माण और बुनाई – इन सभी प्रक्रियाओं में स्थानीय लोगों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यह उद्योग केवल आर्थिक विकास ही नहीं, बल्कि ग्रामीण आत्मनिर्भरता को भी मजबूत करता है।

भारत सरकार भी रेशम उद्योग को बढ़ावा देने के लिए अनेक योजनाएँ चला रही है। प्रशिक्षण, तकनीकी

सहायता और आर्थिक सहयोग के माध्यम से इस उद्योग को आधुनिक स्वरूप देने का प्रयास किया जा रहा है।

उँगलियों की कला से बनती सांस्कृतिक विरासत

रेशम उद्योग भारतीय हस्तकला और शिल्पकला का जीवंत उदाहरण है। रेशमी वस्त्रों पर की जाने वाली कढ़ाई, जरी कार्य, हाथ से बुनाई और पारंपरिक डिजाइन भारतीय

कलाकारों की अद्भुत प्रतिभा को दर्शाते हैं।

बनारसी साड़ियों पर जरी का कार्य, कांचीवरम साड़ियों के चौड़े बॉर्डर, असम की मूंगा सिल्क की प्राकृतिक चमक और बालूचरी साड़ियों पर पौराणिक चित्रांकन भारतीय कला की अनूठी पहचान हैं। इन वस्त्रों को बनाने में महीनों का समय और अत्यधिक





मेहनत लगती है।

आज मशीनों के बढ़ते उपयोग के बावजूद हस्तनिर्मित रेशमी वस्त्रों की मांग बनी हुई है। लोग आज भी हाथ से बुने हुए रेशमी वस्त्रों को विशेष महत्व देते हैं, क्योंकि उनमें कलाकार की आत्मा और परिश्रम झलकता है।

बदलते समय में भी कायम है रेशम का आकर्षण

समय के साथ फैशन और जीवन शैली में अनेक परिवर्तन आए हैं, किंतु रेशम का महत्व आज भी बरकरार है। आधुनिक डिजाइनर पारंपरिक रेशमी वस्त्रों को नए रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। अब रेशम केवल साड़ियों तक सीमित नहीं रहा, बल्कि कुर्ते, जैकेट, दुपट्टे, स्कार्फ और गृह सज्जा की वस्तुओं में भी इसका उपयोग बढ़ गया है।

अंतरराष्ट्रीय बाजार में भारतीय रेशम की माँग लगातार बढ़ रही है। विदेशी लोग भारतीय रेशमी वस्त्रों की कलात्मकता और गुणवत्ता से प्रभावित होते हैं। “मेक इन इंडिया” और “वोकल फॉर लोकल” जैसे अभियानों ने भी भारतीय रेशम उद्योग को नई पहचान दी है।

हालाँकि आधुनिकता के इस दौर में रेशम उद्योग को कई चुनौतियों का सामना भी करना पड़ रहा है। कृत्रिम रेशों की बढ़ती लोकप्रियता और पारंपरिक कारीगरों की घटती संख्या इस उद्योग के सामने गंभीर समस्याएँ हैं। फिर भी भारतीय कारीगर अपनी कला और परंपरा को जीवित रखने के लिए निरंतर प्रयासरत हैं।

प्रकृति, परंपरा और प्रगति का सुंदर मेल

प्राकृतिक रेशम पर्यावरण की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण माना जाता है। यह जैविक और प्राकृतिक रेशा है, जो प्रकृति के अनुकूल होता है। आज जब पूरी दुनिया पर्यावरण संरक्षण की ओर ध्यान दे रही है, तब प्राकृतिक रेशम का महत्व और अधिक बढ़ गया है।

ग्रामीण क्षेत्रों में शहतूत की खेती पर्यावरण संतुलन

बनाए रखने में भी सहायक होती है। रेशम उद्योग ग्रामीण विकास और पर्यावरण संरक्षण दोनों के बीच संतुलन स्थापित करने का कार्य करता है।

भारत की पहचान बन चुके रेशमी धागे

रेशम भारतीय पहचान का अभिन्न हिस्सा बन चुका है। जब कोई विदेशी भारतीय संस्कृति की कल्पना करता है, तो उसके मन में रंग-बिरंगी रेशमी साड़ियों, पारंपरिक परिधानों और भव्य हस्तकला की छवि उभरती है। रेशम ने भारत की सांस्कृतिक छवि को विश्व मंच पर गौरव प्रदान किया है।

रेशम के धागे केवल वस्त्र नहीं बुनते, बल्कि वे भारत की सभ्यता, परंपरा और भावनाओं को भी जोड़ते हैं। इनमें मेहनतकश कारीगरों का श्रम, भारतीय महिलाओं की गरिमा, लोकजीवन की सरलता और संस्कृति की समृद्धि समाहित होती है।

धागों में सिमटी भारतीयता

रेशम भारतीय संस्कृति की उस सुंदर धरोहर का नाम है, जिसने सदियों से भारतीय जीवन को सौंदर्य, गरिमा और समृद्धि प्रदान की है। इसके धागों में इतिहास की स्मृतियाँ, परंपराओं की खुशबू और भारतीयता की आत्मा बसी हुई है। यह केवल एक उद्योग नहीं, बल्कि भारत की सांस्कृतिक चेतना का जीवंत प्रतीक है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि हम अपनी इस अमूल्य धरोहर को संरक्षित करें। पारंपरिक कारीगरों को प्रोत्साहन देकर, हस्तनिर्मित वस्त्रों को अपनाकर और भारतीय रेशम को वैश्विक पहचान दिलाकर हम इस संस्कृति को आने वाली पीढ़ियों तक पहुँचा सकते हैं।

वास्तव में, रेशम के ये कोमल धागे भारतीय संस्कृति की उस अटूट डोर के समान हैं, जो अतीत, वर्तमान और भविष्य को प्रेमपूर्वक बाँधकर रखती हैं।

विभा कनन

मदुरई, कोयम्बतूर, तमिलनाडु



तारादेवी, शिमला की आध्यात्मिक यात्रा — एक शांतिदायक अनुभव

हि माचल प्रदेश की मनोरम वादियों में बसा तारादेवी मंदिर केवल एक धार्मिक स्थल ही नहीं, बल्कि मन और आत्मा को शांति देने वाला एक दिव्य स्थान है। जो एक बार यहां आ जाये तो फिर बार-बार आने का मन करें। शिमला से लगभग 11 किलोमीटर दूर, ऊँची पहाड़ी पर स्थित यह मंदिर मां तारा देवी, जो कि दुर्गा माँ का ही एक रूप है, उसे समर्पित है।

यहाँ आने के लिए वैसे तो सभी ओर से बस की सुविधा है तथा मुख्य सड़क से एक मार्ग मंदिर के मुख्य द्वार तक भी जाता है, जहां हम बस सर्विस के साथ-साथ अपने निजी वाहन से भी आसानी से पहुंच सकते हैं। यद्यपि तारादेवी मंदिर पर जाने के लिए यदि पूर्ण आनंद लेना चाहते हैं तो कालका से छोटी ट्रेन की तारादेवी स्काउट हट की टिकट लेकर छमाछम चलने वाली ट्रेन में यात्रा का सुखद अनुभव ले सकते हैं। छोटी नैरो पटरी पर चलने वाली यह ट्रेन जब गगनचुंबी देवदार के छायादार जंगलों से सर्प की भाँति इठलाती हुई, बल खाती हुई, सीटी बजाती हुई चलती है तो आपका हृदय गदगद हो उठता है और जब यह मार्ग में पड़ने वाली अनेक अंधेरी सुरंगों से सीटी बजाती हुई गुजरती है तो इस अविस्मरणीय दृश्य का वर्णन करना ही अपने आप में रोमांच पैदा कर देता है। ट्रेन में बैठे लोग खुशी के मारे झूम उठते

हैं और बच्चे किलकारियाँ मारकर अपनी अपार खुशी व्यक्त करते हैं। लगभग पांच घंटे के बाद तारादेवी स्काउट हट पर उतरने के बाद मंदिर तक का पैदल पगडंडियों वाला रास्ता प्राकृतिक सौंदर्य का बहुत ही सुंदर नजारा है।

यात्रा का अनुभव :

लगभग एक घंटे तक जब आप ऊँचे-ऊँचे देवदार के घने जंगलों के बीच से पगडंडियों को रेंदते हुए आगे बढ़ते हैं तो देवदार की ठंडी हवा आपकी थकान को हर ले जाती है। बीच-बीच में आप मखमली घास पर



बैठकर कुछ देर आराम कर फिर से चल सकते हैं। सारे मार्ग में कहीं ऊँची पर्वत श्रृंखला दिखाई देगी तो कहीं गहरी खाई, दूर-दूर तक फैली हुई घाटियां आपको नयनाभिराम का सुख देंगी। रास्ते में पगडंडियों पर कहीं-कहीं बिच्छु वटी भी खड़ी मिल जाती है। इसके संपर्क में आने से

शरीर में असहनीय खुजली शुरू हो जाती है। आप जहां भी स्पर्श करते जायेंगे, खुजली भी वहां - वहां फैलती जायेगी। किंतु कभी आप इसकी चपेट में आ जाये तो घबराने की जरूरत नहीं है। तुरंत इसी के पास आपको पालक जैसे पत्तों का पौधा दिखाई देगा,





उसके पत्ते पत्थर पर रगड़कर लगाने से तुरंत लाभ मिल जाता है। जब आप धीरे-धीरे तारादेवी की ओर बढ़ते हैं, देवदार की ठंडी हवाएं और पक्षियों की मधुर ध्वनि मन को धीरे-धीरे बाहरी दुनिया से अलग कर देती हैं। पैदल चढ़ाई करके दर्शन करना आपके लिए एक तपस्या और आत्मिक यात्रा बन जाती है। यह यात्रा अपने आप में एक ध्यान (मेडिटेशन) जैसी लगती है।

आध्यात्मिक महत्व :

तारादेवी मंदिर में मां तारा की पूजा शक्ति, साहस और शांति के लिए की जाती है। माना जाता है कि यहां सच्चे मन से मांगी गई मनोकामनाएं पूर्ण होती हैं। मंदिर का वातावरण इतना पवित्र और शांत है कि व्यक्ति अपने अंदर एक नई ऊर्जा और सकारात्मकता महसूस करता है। प्रकृति और शांति का संगम मंदिर परिसर से चारों ओर फैली हरियाली, दूर-दूर तक दिखती पहाड़ियां और बादलों का स्पर्श - यह सब मिलकर एक अलौकिक दृश्य प्रस्तुत करते हैं। यहां बैठकर ध्यान करना या कुछ समय मौन रहना, जीवन के तनाव को दूर कर देता है।

तारादेवी की यात्रा केवल एक पर्यटन नहीं, बल्कि आत्मा की शांति की खोज है। यहां आने वाला हर व्यक्ति कुछ न कुछ आध्यात्मिक अनुभव लेकर ही

लौटता है - चाहे वह सुकून हो, ऊर्जा हो या जीवन को देखने का नया दृष्टिकोण।

मंदिर भोजनालय :

मंदिर परिसर में स्थित भोजनालय में आपको बड़ी संख्या में सेवादार भंडारे की व्यवस्था में सेवा करते हुए मिलेंगे। यहां के भंडारे की विशेषता यह है कि आपको यहां बहुत ही प्रेम के साथ प्रसाद वितरण किया जाता है।

यहां 4-5 किस्म के शाक -सब्जियाँ, 2-3 किस्म की दाल व सबसे प्रसिद्ध गुलदाने की मीठी सब्जी आपको परोसी जाती है, जिसका स्वाद आप कई दिनों तक नहीं भूल पाते। खाद्य सामग्री व्यर्थ न जाये इसलिए कम मात्रा में किंतु बार-बार वितरण किया जाता है। सेवादारों की वितरण करने की बिजली जैसी स्पीड देखकर हर कोई हैरान हो जाता है। विशेष बात यह है कि भंडारे में हर मंगलवार हजारों श्रद्धालु प्रसाद ग्रहण करते हैं। वितरण की इतनी अधिक स्पीड होने के बाद भी खाद्य सामग्री का अंश मात्र नीचे नहीं गिरता। भंडारे के बारे में यह जानकर भी आपको आश्चर्य होगा कि यदि यहाँ कोई श्रद्धालु भंडारा देने के लिए बुकिंग कराना चाहता है तो उसे एक वर्ष से भी अधिक समय तक अपनी बारी की प्रतीक्षा करनी पड़ सकती है। इसी से आप इस मंदिर की मान्यता का, भंडारे की महत्ता का अनुमान लगा सकते हैं।

अगर आप जीवन की भागदौड़ से थोड़ी राहत चाहते हैं, तो तारादेवी शिमला की यह यात्रा आपके लिए एक अद्भुत और शांतिदायक अनुभव साबित हो सकती है।

- डॉ. उमेश प्रताप वत्स
यमुनानगर, हरियाणा



केरल में हिंदी

दक्षिण भारत के जिन राज्यों में हिंदी भाषा का सर्वाधिक प्रचार-प्रसार संभव हो सका है, उनमें केरल का महत्वपूर्ण स्थान है। केरल के सभी विद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है। राज्य के सभी विश्वविद्यालयों में हिंदी का पठन-पाठन और शोध-कार्य लंबे समय से हो रहा है। केरल के लोगों ने न केवल हिंदी भाषा और साहित्य के विकास में योगदान दिया है, बल्कि हिंदी के क्षेत्र में गहन शोध को भी प्रोत्साहित किया है।

केरल की भौगोलिक स्थिति और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि ऐसी रही है, जिसने देश-विदेश के लोगों को व्यापार, पर्यटन तथा अन्य उद्देश्यों से यहाँ आने के लिए आकर्षित किया। जो लोग यहाँ आए, वे अपनी भाषा और संस्कृति भी साथ लेकर आए, और केरल के उदार समाज ने उनका खुले दिल से स्वागत किया। केरल की सर्वदेशीयता और सांस्कृतिक बहुलता ने हिंदी के विकास और प्रसार में निःसंदेह महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों में दक्खिनी-हिंदी भाषी नवाबों के संपर्क में आने से तिरुवितांकुर में दक्खिनी हिंदी का प्रचलन बढ़ा। केरल के उत्तरी भाग, विशेषकर मालाबार क्षेत्र में, हैदर अली और टीपू सुल्तान के अभियानों तथा उनके राजनीतिक प्रभाव के कारण उत्तर भारतीय भाषाओं का संपर्क बढ़ा। तीर्थयात्रियों, पर्यटकों, व्यापारियों और शासकों के निरंतर आवागमन ने भी केरल में हिंदी के प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

अठारहवीं शताब्दी के कवि अपने तुल्लल-काव्य के लिए प्रसिद्ध थे। तुल्लल-काव्य में मुख्यतः पुराणों की कथाएँ होती थीं, जिनका अभिनय, संगीत और नृत्य के माध्यम से मंचन किया जाता था। यह काव्य-विधा प्रायः हास्य-रस से परिपूर्ण होती थी। कुंचन नम्पियार

की रचना स्यमन्तक कथा में ब्राह्मण-भोज का एक प्रसंग आता है। इस प्रसंग में काशी से आए गोसाइयों के संवादों में हिंदी के अनेक शब्दों और अभिव्यक्तियों का प्रयोग देखने को मिलता

है, जो उस समय के भाषाई संपर्क और सांस्कृतिक आदान-प्रदान का प्रमाण प्रस्तुत करता है।

केरल में हिंदी के वास्तविक विकास की पृष्ठभूमि हिंदी साहित्य सम्मेलन के आठवें अधिवेशन में तैयार हुई। हिंदी साहित्य सम्मेलन के आठवें अधिवेशन (1918) के अध्यक्षीय भाषण में महात्मा गांधी ने दक्षिण भारत में (हिंदी के प्रचार-प्रसार के संबंध में जो विचार व्यक्त किए, उन्होंने पूरे दक्षिण भारत में), हिंदी-जागरण की अलख जगा दी। हिंदीतर राज्यों में हिंदी के प्रचार के लिए गांधी का आह्वान लोगों के लिए हिंदी सीखने की प्रेरणा बनी।

गांधी के हिंदी-प्रचार संबंधी आह्वान को केरल के लोगों ने राष्ट्रीयता और देशप्रेम से जोड़कर देखा तथा वे बड़े उत्साह के साथ हिंदी के प्रचार-प्रसार के कार्य में जुट गए।

गांधी के निर्देश पर देवदास गांधी, हरिहर शर्मा और ऋषिकेश शर्मा दक्षिण भारत गए और वहाँ हिंदी के प्रचार-प्रसार का कार्य आरम्भ किया।

दक्षिण भारत में हिंदी के प्रचार-प्रसार हेतु गांधीजी ने सेठ हुकमचंद और जमनालाल बजाज जैसे संपन्न लोगों से आर्थिक सहयोग की अपेक्षा की।

कोट्टायम के कोडुंगल्लूर गाँव में जन्मे और पट्टाबि के प्रसिद्ध संस्कृत कॉलेज में शिक्षित एम. के. दामोदरन





उणि ने महात्मा गांधी की प्रेरणा से केरल में हिंदी के प्रचार-प्रसार का बीड़ा उठाया। वे केरल में हिंदी के प्रथम प्रचारक बने। उन्होंने हिंदी को शहरों से लेकर गाँवों तक पहुँचाने के लिए निरंतर प्रयास किए। इस कार्य में देवदूत विद्यार्थी ने उनका महत्वपूर्ण सहयोग किया।

देवदूत विद्यार्थी मूलतः बिहार के निवासी थे। उन्होंने केरल में हिंदी के प्रचार-प्रसार में अद्वितीय योगदान दिया। उनका विवाह भी केरल में ही हुआ था। उनकी पत्नी भारती विद्यार्थी स्वयं हिंदी की विदुषी थीं।

हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के इस अभियान में स्कूलों, कॉलेजों और आश्रमों ने भी भरपूर सहयोग दिया। पालघाट का शबरी आश्रम और कालीकट का गणपति हाईस्कूल ऐसे प्रमुख केंद्र थे, जहाँ हिंदी प्रचारक बैठकर हिंदी के प्रचार-प्रसार की योजनाएँ बनाया करते थे।

हिंदी प्रचार के दौर में महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू और राजेंद्र प्रसाद जैसे प्रमुख स्वतंत्रता सेनानियों का केरल आकर हिंदी प्रचारकों को प्रोत्साहित करना उनके लिए हौसला-अफजाई का बड़ा कारण बना। इसी प्रकार हजारी प्रसाद द्विवेदी,

रामधारी सिंह दिनकर, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', हरिवंश राय बच्चन, महादेवी वर्मा, इलाचंद्र जोशी, गंगाप्रसाद पांडेय, नंददुलारे वाजपेयी, विष्णुकांत शास्त्री, उपेंद्रनाथ अशक आदि अनेक विद्वानों ने केरल का दौरा कर हिंदी के प्रचार-प्रसार को नई गति और प्रतिष्ठा प्रदान की।



हिंदी के बढ़ते प्रचार-प्रसार और उसकी लोकप्रियता को देखते हुए विद्यालयों के पाठ्यक्रम में हिंदी को शामिल करने की मुहिम धीरे-धीरे तेज हो गई। 1928 में कोच्चि रियासत की विधानसभा में विद्यालयों के पाठ्यक्रम में हिंदी को अनिवार्य विषय के रूप में स्थान देने संबंधी एक प्रस्ताव सी. टी. साहब ने प्रस्तुत किया। गौरी पवित्रन ने इस प्रस्ताव का जोरदार समर्थन किया, जिसके परिणामस्वरूप यह प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। इसके बाद 1928 से कोच्चि के विद्यालयों में हिंदी ऐच्छिक विषय के रूप में पढ़ाई जाने लगी।

सबसे पहले 1929 में एरनाकुलम के रुद्रविलास लोअर सेकेंडरी स्कूल ने हिंदी को अनिवार्य भाषा के रूप में स्वीकार किया। इसके बाद त्रिशूर के कुछ अन्य विद्यालयों ने भी हिंदी को अनिवार्य भाषा के रूप में अपनाया।

1931 में विद्यालयों में हिंदी को अनिवार्य विषय के रूप में लागू करने का प्रस्ताव त्रावणकोर विधान परिषद में प्रस्तुत किया गया। यह प्रस्ताव ए. एस. दामोदरन आशान ने रखा था।

1934-35 तक आते-आते हिंदी विद्यालयों के

पाठ्यक्रम में सम्मिलित की जाने लगी थी। 1957 तक केरल के विश्वविद्यालयों में हिंदी में स्नातकोत्तर शिक्षा की सुविधा उपलब्ध हो गई थी। हिंदी स्नातकोत्तर एवं शोध विभाग की स्थापना सबसे पहले 1963 में कोच्चि में की गई। प्रोफेसर ए. चन्द्रहासन इस विभाग के प्रथम विभागाध्यक्ष बने।



विभाग की पहल पर हिंदी में दो महत्वपूर्ण ग्रंथ प्रकाशित हुए। पहला ग्रंथ 'प्राचीन कवि : केशवदास' था, जिसका प्रकाशन लोकभारती प्रकाशन द्वारा किया गया। हिंदी विभाग की पहल पर प्रकाशित दूसरा ग्रंथ 'केरल की वीरगाथाएँ' था, जिसे एस. चाँद एंड कंपनी ने प्रकाशित किया।

हिंदी विभाग का पहला शोधप्रबंध टी. के. सरलादेवी द्वारा प्रस्तुत किया गया था। इसका विषय था- 'मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में नारी-भावना'। केरल में हिंदी शोध के विकास में टी. के. सरलादेवी, एम. ईश्वरी और एल. सुनीता का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। इन विदुषियों के शोधकार्य ने केरल में हिंदी अनुसंधान की सुदृढ़ आधारशिला रखी।

बाद में कालीकट विश्वविद्यालय में भी हिंदी विभाग की स्थापना हुई। डॉ. एम. मलिक मोहम्मद इस विभाग के प्रथम अध्यक्ष बने। उन्होंने अलीगढ़ और आगरा से हिंदी की उच्च शिक्षा प्राप्त की थी। हिंदी भाषा और साहित्य के क्षेत्र में उनके उल्लेखनीय योगदान के लिए उन्हें पद्मश्री से सम्मानित किया गया। बाद में वे वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग के अध्यक्ष भी बने।

केरल में सबसे पहले हिंदी में एम.फिल. की पढ़ाई कालीकट विश्वविद्यालय में शुरू हुई। इस विश्वविद्यालय ने अनुवाद-विज्ञान और राजभाषा में डिप्लोमा पाठ्यक्रमों की भी शुरुआत की। इन पाठ्यक्रमों की रूपरेखा के निर्माण तथा इनके प्रारंभ

का श्रेय अनुवाद-विज्ञान के विशेषज्ञ डॉ. गोपीनाथन को जाता है।

विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में हिंदी के प्रवेश के बाद हिंदी के अध्ययन और अध्यापन के प्रति लोगों की रुचि निरंतर बढ़ती गई। इसके साथ ही हिंदी और मलयालम साहित्य के बीच तुलनात्मक अध्ययन की प्रवृत्ति भी विकसित हुई तथा केरल के सभी विश्वविद्यालयों में तुलनात्मक अध्ययन को विषय बनाकर अनेक महत्वपूर्ण शोध किए गए। 'मैथिलीशरण गुप्त और वल्लत्तोल का तुलनात्मक अध्ययन', 'आधुनिक हिंदी तथा मलयालम काव्य का तुलनात्मक अध्ययन', 'हिंदी और मलयालम में कृष्ण साहित्य', 'तकषि और नागार्जुन : एक तुलनात्मक अध्ययन', 'एषुत्तच्छन और तुलसी का तुलनात्मक अध्ययन' तथा 'तुलसी और तुंचन का तुलनात्मक अध्ययन' आदि इस दिशा

में किए गए प्रमुख शोधकार्य हैं।



केरल में भाषाविज्ञान के क्षेत्र में भी अनेक महत्वपूर्ण विषयों पर शोध कार्य हुए। हिंदी और मलयालम की समान शब्दावली के भाषावैज्ञानिक अध्ययन के साथ-साथ दक्षिण भारतीय भाषाओं में

प्रयुक्त हिंदी शब्दावली पर भी कार्य किया गया।

तुलनात्मक अध्ययन ने अनुवाद की आवश्यकता को बार-बार रेखांकित किया। परिणामस्वरूप, धीरे-धीरे अनुवाद-कार्य ने गति पकड़ी और जी. शंकरकुरुप, कुमारन आशान, वल्लत्तोल नारायण मेनन, एन. बालमणि अम्मा, के. दामोदरन, के. एम. पणिक्कर, ई.



वी. कृष्ण पिल्लै, वी. माधवन नायर तथा वी. कृष्णन नंपूतिरि की अनूदित रचनाएँ हिंदी की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगीं।

अब केरल के लोग हिंदी में मौलिक रचनाएँ लिखने लगे थे। उनके प्रकाशन के लिए पत्रिकाओं की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। केरल के अनुवादकों को भी लगा कि उनकी अनूदित रचनाओं को पत्र-पत्रिकाओं में स्थान मिलना चाहिए। इस प्रकार केरल में हिंदी पत्रिका-आंदोलन की शुरुआत हुई।

सन् 1941 में केरल से जी. नीलकण्ठन नायर ने 'हिंदी मित्र' नामक हिंदी पत्रिका का संपादन किया। बाद में 'ललकार', 'विश्व भारती', 'अरविंद', 'प्रताप', 'आर्यशैली', 'केरल ज्योति', 'संगठन' और 'अनुशीलन' जैसी अनेक हिंदी पत्रिकाएँ केरल से प्रकाशित हुईं। केरल हिंदी साहित्य मंडल, हिंदी विद्यापीठ और केरल हिंदी साहित्य अकादमी जैसी संस्थाओं ने समय-समय पर हिंदी से जुड़े विषयों पर विस्तृत चर्चा कर हिंदी के विकास का मार्ग प्रशस्त किया।

इसके बाद केरल में दूरदर्शन का आगमन हुआ। हिंदी की बढ़ती लोकप्रियता को देखते हुए दूरदर्शन के तिरुवनंतपुरम केंद्र से 'दर्पण' नामक एक हिंदी कार्यक्रम का प्रसारण प्रारंभ किया गया। यह कार्यक्रम महीने में एक बार प्रसारित होता था।

हिंदी के विकास में 'मातृभूमि' समाचारपत्र के व्यवस्थापक नीलकण्ठन नंपूतिरिप्पाड ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनकी पत्नी कोच्चुकुट्टी अम्मा ने न केवल हिंदी सीखी, बल्कि उसके प्रचार-प्रसार में भी अभूतपूर्व योगदान दिया। 'मातृभूमि' मूलतः एक मलयालम समाचारपत्र था, किंतु उसने कुछ समय तक हिंदी को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से हिंदी के पाठ भी प्रकाशित किए।

-अनामिका अनु
केरल

मैं स्त्री हूँ



मैं सृष्टि की उद्भव हूँ,
रचना की पर्याय हूँ,
कला का रूप हूँ,
शौर्य का प्रादुर्भाव हूँ,
मैं स्त्री हूँ।

मैं पराक्रम का उद्गम हूँ,
साहस की ज्योत हूँ,
सहनशीलता का उत्कर्ष हूँ,
क्षमा की स्रोत हूँ,
मैं स्त्री हूँ।

मैं चरित्र निर्माण की नींव हूँ,
त्याग का स्वरूप हूँ,
संस्कृति का आधार हूँ,
शक्ति का प्रतिरूप हूँ,
मैं स्त्री हूँ।

- श्री संतोष कुमार झा,
अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक
कोंकण रेलवे कॉर्पोरेशन लिमिटेड



अखिल रेल हिंदी प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता – एक यात्रा संस्मरण

यह यात्रा संस्मरण केवल मेरी यात्रा का विवरण नहीं बल्कि मेरे मन की अनुभूतियों, यात्रा की स्मृतियों और व्यक्तिगत अनुभवों का वर्णन है। सिकंदराबाद में आयोजित यह प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता मेरे मानस पटल पर हमेशा के लिए सुंदर अनुभव बनकर अंकित हो गई। यह अनुभव मुझे यह याद दिलाता है कि भारतीय रेल केवल यात्रियों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचाने का माध्यम ही नहीं बल्कि देश की विभिन्न संस्कृतियों और भाषाओं को जोड़ने तथा हिंदी के प्रचार-प्रसार में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

दिनांक 06 फरवरी 2026 को सिकंदराबाद में स्थित भारतीय रेल वित्तीय प्रबंधन संस्थान (IRIFM) में आयोजित अखिल रेल हिंदी प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता 2025 में भाग लेने का अवसर मेरे लिए अत्यंत अविस्मरणीय अनुभव रहा। यह यात्रा केवल एक प्रतियोगिता में भाग लेने की यात्रा नहीं थी, बल्कि इसमें रेलयात्रा का रोमांच, साथियों का स्नेह, नए शहर का अनुभव और हिंदी भाषा के प्रति समर्पण का सुंदर संगम भी था। इस यात्रा की शुरुआत 03 फरवरी को हावड़ा स्टेशन से हुई। उस दिन सुबह लगभग 08 बजकर 25 मिनट पर फलकनुमा एक्सप्रेस हमें लेकर सिकंदराबाद की ओर रवाना हुई। हावड़ा स्टेशन का दृश्य हमेशा की तरह जीवंत और हलचल से भरा हुआ था। प्लेटफॉर्म पर यात्रियों की भीड़, चाय और नाश्ते की दुकानों की आवाजें तथा रेलगाड़ियों की आवाजाही की आवाजें यात्रा के उत्साह को और बढ़ा रही थी।

इस यात्रा में दक्षिण पूर्व रेलवे के साथ-साथ पूर्व रेलवे और मेट्रो रेलवे की टीम भी हमारे साथ थी। अलग-अलग रेलवे इकाइयों के अधिकारियों और कर्मचारियों का एक साथ यात्रा करना अपने-आप में एक सुखद अनुभव था। ट्रेन के चलने के साथ ही सभी के बीच बातचीत, परिचय और हल्की-फुल्की चर्चा का सिलसिला शुरू हो गया। हिंदी प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता को लेकर सभी के मन

में उत्सुकता और उत्साह साफ दिखाई दे रहा था। जैसे-जैसे ट्रेन आगे बढ़ती गई, खिड़की के बाहर बदलते हुए दृश्य यात्रा को और भी सुंदर बना रहे थे। पश्चिम बंगाल के हरे-भरे खेत, छोटे-छोटे गांव और

दूर तक फैले पेड़ों की कतारें मन को आनंदित कर रही थीं। रास्ते में उड़ीसा और आंध्र प्रदेश के विभिन्न स्टेशनों से गुजरते हुए भारत की विविधता का सुंदर अनुभव हुआ। सहयात्रियों के साथ चाय की चुस्कियां लेते हुए हिंदी भाषा, साहित्य और रेलवे के अनुभवों पर चर्चा करते हुए समय कब बीत गया, इसका पता ही नहीं चला।

लगभग दो दिनों की सुखद यात्रा के बाद हम 05 फरवरी को सिकंदराबाद पहुंचे। स्टेशन के बाहर भव्य स्टेशन भवन का निर्माण कार्य चल रहा था। वहां से IRIFM की बस द्वारा हम संस्थान पहुंचे। IRIFM भारतीय रेल का एक महत्वपूर्ण प्रशिक्षण संस्थान है, जहाँ मुख्य रूप से भारतीय रेलवे लेखा सेवा (IRAS) तथा अन्य अधिकारियों को वित्तीय प्रबंधन, लेखा और प्रशासन से संबंधित प्रशिक्षण दिया जाता है। हरित वातावरण में स्थित यह परिसर आधुनिक सुविधाओं से युक्त है और भारतीय रेल के प्रशासनिक प्रशिक्षण का एक प्रमुख केंद्र माना जाता है। इस कार्यक्रम का एक अत्यंत प्रशंसनीय पक्ष वहाँ का उत्कृष्ट अतिथि सत्कार भी रहा। संस्थान द्वारा सभी प्रतिभागियों और आगंतुकों का जिस आत्मीयता, विनम्रता और गरिमा के साथ स्वागत किया गया, वह वास्तव में सराहनीय था। आवास, भोजन और अन्य व्यवस्थाएँ अत्यंत सुव्यवस्थित थीं। प्रत्येक छोटी-बड़ी आवश्यकताओं का ध्यान रखा गया, जिससे प्रतिभागियों को किसी प्रकार की कोई असुविधा न हो। संस्थान के अधिकारियों और कर्मचारियों का सहयोग एवं सौहार्दपूर्ण





व्यवहार इस बात का प्रमाण था कि भारतीय रेल में “अतिथि देवो भवः” की परंपरा आज भी जीवित है।

अगले दिन अर्थात् 06 फरवरी को भारतीय रेल वित्तीय प्रबंधन संस्थान (IRIFM) के ऑडिटोरियम में अखिल रेल हिंदी प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता प्रारंभ हुई। देश के विभिन्न रेलवे जोनों से आई टीमों ने इसमें भाग लिया। प्रतियोगिता के कई रोचक चरण थे, जिनमें हिंदी भाषा, साहित्य, भारतीय संस्कृति, विज्ञापन तथा राजभाषा नीति से संबंधित प्रश्न पूछे गए। कार्यक्रम का संचालन अत्यंत सुव्यवस्थित और अत्यंत प्रभावी ढंग से श्री सतविंदर सिंह, उप निदेशक रेलवे बोर्ड द्वारा किया गया। उन्होंने अपनी सहज, स्पष्ट और प्रभावी वक्तव्य शैली से पूरे कार्यक्रम को अत्यंत रोचक बना दिया। प्रतियोगिता के प्रत्येक चरण की घोषणा, नियमों की जानकारी तथा प्रतिभागियों का परिचय और कार्यक्रम को समयबद्ध ढंग से आगे बढ़ाने में उनकी भूमिका सराहनीय रही। उनके संचालन में भाषा की शुद्धता, भावों की सहजता और प्रस्तुति की गरिमा स्पष्ट रूप से दिखाई दे रही थी।

कार्यक्रम के दौरान उपस्थित सभी प्रतिभागियों और अधिकारियों में उत्साह का वातावरण बना रहा। प्रतिभागियों की तत्परता और ज्ञान देखकर यह स्पष्ट था कि भारतीय रेल में हिंदी के प्रति गहरी रुचि और सम्मान है। यह कार्यक्रम न केवल ज्ञानवर्धक था, बल्कि भारतीय रेल में हिंदी के प्रचार-प्रसार के प्रति प्रतिबद्धता का भी सुंदर उदाहरण था। प्रतियोगिता का समापन परिणामों की घोषणा के साथ हुआ। प्रतियोगिता में पूर्व मध्य रेलवे, हाजीपुर को प्रथम, उत्तर पश्चिम रेलवे, जयपुर को द्वितीय तथा पूर्व तट रेलवे, भुवनेश्वर को तृतीय स्थान प्राप्त हुआ।



प्रतियोगिता के पश्चात हमें एक दिन हैदराबाद और सिकंदराबाद के प्रमुख दर्शनीय स्थलों को देखने का अवसर भी मिला। यह यात्रा का सबसे आनंददायक और रोचक हिस्सा था। सबसे पहले हमने ऐतिहासिक गोलकुंडा किला देखा। ऊंचाई पर स्थित यह किला अपनी भव्यता और स्थापत्य कला के लिए प्रसिद्ध है। इस किले से पूरे शहर का दृश्य अत्यंत आकर्षक दिखाई देता है। वहां की प्राचीन दीवारें और विशाल द्वार इतिहास की गौरवशाली कहानी सुनाते प्रतीत होते हैं। इसके बाद हमने प्रसिद्ध चारमीनार के आसपास के क्षेत्र का भ्रमण किया। चारमीनार के चारों ओर स्थित बाजारों की रौनक और पारंपरिक संस्कृति का रंग देखते ही बनता है। वहीं पास में स्थित हुसैन सागर झील और उसके मध्य स्थित बुद्ध प्रतिमा का दृश्य अत्यंत मनोहारी लगा। हमारी यात्रा का एक और महत्वपूर्ण अनुभव था तेलंगाना विधानसभा के

नए भवन को देखना। यह इमारत आधुनिक स्थापत्य शैली का सुंदर उदाहरण है। इसकी भव्यता और सुव्यवस्थित परिसर देखकर यह स्पष्ट महसूस होता है कि आधुनिक भारत अपनी परंपरा और प्रगति दोनों को साथ लेकर

आगे बढ़ रहा है। साथियों के साथ शहर का यह भ्रमण अत्यंत आनंददायक रहा। पूर्व रेलवे, मेट्रो रेलवे और दक्षिण पूर्व रेलवे के साथियों के साथ बिताए गए इन पलों ने इस यात्रा को और भी विशेष बना दिया। हंसी-मजाक, फोटो और अनुभव साझा करते हुए पूरा दिन कब बीत गया, पता ही नहीं चला।

इस प्रकार सिकंदराबाद की यह यात्रा मेरे लिए केवल एक प्रतियोगिता तक सीमित नहीं रही, बल्कि यह हिंदी भाषा के प्रति समर्पण, भारतीय रेल की एकता और भारत की सांस्कृतिक विविधता का सुंदर अनुभव बन गई। सिकंदराबाद की यह यात्रा और वहां के अनुभव



लंबे समय तक स्मृतियों में अंकित रहेंगे। यह अनुभव हमें यह भी याद दिलाता है कि भारतीय रेल केवल यात्रियों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचाने का माध्यम नहीं है, बल्कि यह देश के विभिन्न क्षेत्रों, संस्कृतियों और भाषाओं को जोड़ने वाला एक मजबूत सेतु भी है।

- संजय प्रसाद

वरिष्ठ अनुवादक, दपूरे, मुख्यालय, कोलकाता

रचनाएँ भेजने हेतु निवेदन

- आपकी उत्कृष्ट रचनाओं का 'रेल राजभाषा' में स्वागत है।
- अपनी रचनाओं की मूल प्रति ही भेजें। लेख/कविता आदि के साथ एक घोषणा पत्र भी संलग्न करें, जिसमें यह स्पष्ट किया गया हो कि शीर्षक से शुरू होने वाला लेख/कहानी/कविता आदि मौलिक एवं अप्रकाशित है तथा इसमें दी गई सामग्री एवं फोटो की जिम्मेदारी लेखक की है। लेख/कहानी/कविता आदि से संबंधित फोटो सामग्री के साथ भेजें। रचनाएं यूनिकोड फॉर्मेट/मंगल में टाइप कराकर वर्ड फाइल के रूप में ही भेजें।
- पत्रिका को और बेहतर बनाने के लिए लेखकों और पाठकों के पत्रों एवं सुझावों का स्वागत है।
- लेखकों से अनुरोध है कि अपना फोटो (जेपीजी फॉर्मेट में), नाम, पता, मोबाइल नं., ई-मेल आईडी, बैंक खाता विवरण और चेक की एक फोटोकॉपी अपनी टाइप की हुई रचना के साथ हमारे ई-मेल patrikahindi@gmail.com पर भेजें।

-संपादक, रेल राजभाषा

जिंदगी कुछ तो बता, तेरा इरादा क्या है



जिंदगी कुछ तो बता, तेरा इरादा क्या है
हाथ पर हाथ धरे, कब तलक बैठा रहूँ मैं।
कब तलक होंट सिए, बातों को सहता रहूँ मैं,
अब तो कुछ भी नहीं-नया या पुराना क्या है,
जिंदगी कुछ तो बता, तेरा इरादा क्या है।
राह सूनी है मगर, पाँव ठिठकते क्यों हैं,
ख्वाब बिखरे हैं तो फिर आँख छलकती क्यों हैं।
हर तरफ शोर है, फिर दिल ये अकेला क्यों है,
इस भँवर में मेरी कशती का किनारा क्या है,
जिंदगी कुछ तो बता, तेरा इरादा क्या है।
थक गया हूँ मैं यूँ ही खुद से लड़ते-लड़ते,
टूटते रिश्तों को हर रोज जोड़ते-टटोलते।
कौन अपना है यहाँ, किसको पुकारूँ आखिर,
इस अँधेरे में उजाले का सहारा क्या है,
जिंदगी कुछ तो बता, तेरा इरादा क्या है।
गर चलना ही लिखा है, तो दिशा भी दे दे,
इन बुझी आँखों को फिर कोई नजरिया दे दे।
या तो तू छीन ले ये साँसों की उलझन मुझसे,
या बता दे कि सफर का ये किनारा क्या है,
जिंदगी कुछ तो बता, तेरा इरादा क्या है।

- मोहम्मद अकरम

कनि. अनुवादक आरेडिका, रायबरेली।



रमेश पोखरियाल निशंक जी की कहानी “कुछ नहीं जिंदगी”

रमेश पोखरियाल ‘निशंक’ जी ऐसे कुछ दुर्लभ व्यक्तियों में हैं, जो राजनीति में होने के साथ-साथ कलाकार का संवेदनशील हृदय रखते हैं। राजनीति की तत्कालिकता और इसके दाँव-पेंच अक्सर साहित्य एवं कला-रचना के लिए विरोधी माने जाते हैं। लेकिन निशंक जी ने सामाजिक आवश्यकताओं और कलाकार की निजी संवेदनशीलता के बीच दुर्लभ संतुलन साधा है। उनकी कहानियाँ अपने समय और समाज की विडम्बनाओं-विसंगतियों पर उंगली रखती हैं और सामाजिक यथार्थ का गहरा बोध दिलाती हैं। इनमें किसी तथाकथित बड़े साहित्यकारों की तरह किसी दुर्लभ, जटिल और कोई बड़ी घटना या सच का एहसास दिलाने का लालच नहीं है बल्कि ये सहजता सहज-सरल भाषा में आम आदमी की कथा कहने का जतन करती हैं। यही सरलता, ऋजुता, इनकी ताकत है। कोई भाषाई तराश और वक्रता नहीं, संरचना में जादुई यथार्थ या ऐसी ही कोई भंगिमा दिखाने का अभिनय नहीं। इसलिए ये हमारे आसपास की कहानियाँ हैं, इनमें आसपास के अनुभव हैं, आसपास की भाषा है। ये आपको धीरे से छूती हैं, मगर जोर का झटका भी देती हैं – संवेदनशील हृदय को। मुहावरे में ‘जोर का झटका धीरे से’। अक्सर इन कहानियों में पहाड़ों में बसा आदमी है। उसका शरीर कोमल पर आत्मा सबल है। इसलिए ये कहानियाँ किसी निराशा या असहायता-विवशता की स्थिति पर अंत नहीं होतीं, बल्कि संघर्ष और जिजीविषा का संदेश देती हैं।

यहाँ मैंने निशंक जी की जिस कहानी को विचार अर्थ चुना है उसका शीर्षक है ‘कुछ नहीं जिंदगी’। कुल जमा तीन पात्र हैं इसमें। हालाँकि पात्रों की प्रधानता नहीं है इसमें। प्रधान तो है एक घटना। जिसके साथ यह घटना बीतती है, देर तक हमें उसका नाम भी नहीं पता चलता। लेखक तो अपनी तरफ से नहीं ही बताता, एक अन्य पात्र के संवादों से उसका नाम

प्रकट होता है—मदन भैया। यद्यपि यही केंद्रीय चरित्र है। अस्पताल की कैंटीन में वार्तालाप के दृश्य के साथ कहानी की शुरुआत होती है। एक बेहद कॉमन अति परिचित—सी बातचीत : ‘साहब क्या चाहिए, कुछ लोगे? क्या क्या है कैंटीन में? जो हुक्म करेगा, थोड़ी देर में बन जाएगा। सामान्य सा ही चाहिए। बस एक सब्जी, दाल और रोटी।’ पूछनेवाला व्यक्ति थोड़ी देर में खाना लेकर आ जाता है। खाना स्वादिष्ट है। लेखक यहीं से आपको उसकी सकारात्मकता का पहला संकेत दे देता है। ग्राहक खाने की प्रशंसा करता है। उसकी उत्सुकता उस व्यक्ति में जगती है। पूछता है कि क्या करता है। कहानी कहने के ये परिचित तरीके हैं, जिन्हें लेखक अपनाता है। हमें पता चलता है वह अस्पताल का ही कर्मचारी है और किसी छुट्टी पर गए लड़के की मदद करते हुए उसके स्थान पर आया हुआ है। वह व्यक्ति किसी और के बुलावे पर चला जाता है। अगर कहानी को नाटक के रूप में देखें तो इस पात्र की, जिसका नाम अभी तक प्रकट नहीं हुआ है, मंच पर उसकी भूमिका समाप्त हो जाती है। लेकिन मजे की बात यह है कि नाटक, अर्थात् यह कहानी उसी की कहानी को लेकर आगे बढ़ती है। उत्सुकता का बीजारोपण रचनाकार कुशलता से कर देता है। यह पात्र है मदन भैया।

वह खुशमिजाज है, जो उसके साथ बीती दुर्घटना के मद्देनजर विरोधाभासी है। घटना छोटी सी है मगर बेहद मार्मिक। मदन परिवार के साथ ऋषिकेश से हरिद्वार जा रहा था। रास्ते में उनकी गाड़ी पर पहाड़ टूटकर गिरा। गाड़ी नीचे खाई में गिरी। लोगों ने नीचे खाई से उन्हें बड़ी मुश्किल से निकाला था। हादसे में उसका परिवार खत्म हो गया। अस्पताल में शय्या पर रहते





छह महीने तक उसे किसी ने बताया नहीं कि उसके बच्चे वहीं और उसकी पत्नी अस्पताल में दो दिन बाद दम तोड़ गई। यहाँ से कहानीकार का लेखकीय दायित्व बोध काम करता है। यदि घटना और उसके मार्मिक चित्रण और घटना के पश्चात मदन के दुखों को ही दिखाता तो उसमें पर्याप्त विस्तार की गुंजाइश थी और लेखकीय कौशल दिखाने की भी संभावना थी, लेकिन लेखक इन चीजों के लालच में न पड़कर पात्र को उस दिशा में मोड़ता है, जो हमें जीवन के प्रति आशा का संदेश देता है, हमारी जिजीविषा को जाग्रत करता है। मदन भैया ने अस्पताल को ही अपना घर बना लिया है। जमीन जायदाद बेचकर उसने मंदिर और धर्मशाला बनवा दिया है और अस्पताल में आनेवालों की सहायता करता है। दूसरों के दुखों में अपने दुखों को वैसे ही प्रवाहित कर देता है जैसे हरिद्वार में अस्थियों को विसर्जित कर देते हैं। ऋषिकेश और हरिद्वार का लोकेल इस दृष्टि से प्रतीकात्मक भी है। लेखक कैटीन की बातचीत में शामिल एक पात्र, जो मदन की कहानी कह रहा है, उसके मुख से अंत में कहलवाता है- “कुछ

नहीं है जिंदगी। चार दिन की चाँदनी, फिर अंधेरी रात। जितना किसी के लिए अच्छा बन सकें, वही है जिंदगी। बाकी तो सब खाक है। जाने किस समय धोखा देकर चली जाए जिंदगी।” यही इस कहानी का संदेश भी है।

जीवन को जितने भी कोण से, जितनी भी यथार्थ-बोध के नाम पर निराशा परोसी जाए, आखिरकार जीना समाप्त तो नहीं कर देते। उन प्रयासों की प्रासंगिकता सदैव बनी रहेगी, जो जिजीविषा को बल देते हैं, मनुष्य को मनुष्य से जोड़ते हैं, मनुष्य को सीमित आत्म से निकालकर उसे दूसरों के लिए भी उपयोगी और सुंदर बनाते हैं।

निशंक जी ने प्रचुर परिमाण में लिखा है, उनकी कहानियाँ विभिन्न विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में लगी हैं, उनपर शोध भी हुए हैं। पाठक जगत को उनकी सृजनरत लेखनी से नए-नए उपहार निरंतर प्राप्त होते रहेंगे, इसकी आशा है।

-डॉ. बरूण कुमार
पूर्व निदेशक (राजभाषा),
रेल मंत्रालय, रेलवे बोर्ड

नज़रिया

धूप भरी उस दोपहरी में,
ढो-ढो कर बोझा थक चुका जब,
कुछ पल बैठा सुस्ताने को,
पड़ी नजर बगल वाली ऐसी बिल्डिंग पर।

सोचा क्या खुशनसीब हैं लोग,
जिनके घर है इस इमारत में,
सुकून भरा उनका जीवन,
चैन से रात को सोते होंगे,
पेट भरने की फिक्र नहीं,
जो चाहे वो खाते होंगे,
जीवन को मौज से जीते होंगे,
जो चाहे वो करते होंगे।

बिल्डिंग से बाहर सहसा एक आदमी निकला,
परेशान सा थका हारा,

आंखों के नीचे काला घेरा,
बेल्ट से नीचे लटकता पेट,
हाथ में लिए हुए सूटकेस।

खींच रहा था अपना शरीर,
कानों पर लगा रखा मोबाइल फोन,
न जाने क्यों था वह मौन,
फोन रखा जब होश में आया,
दबी आवाज में कुछ बुदबुदाया।

कह रहा था ऐसी जिंदगी से तो मर जाना अच्छा,
सुकून की नींद नहीं सो सकता,
पैसा होकर भी मन का नहीं खा सकता,
ये जीना भी कोई जीना है।

नजर पड़ी किनारे छांव में बैठे एक मजदूर पर,



सोचा इसका ही जीवन भला है,
कम से कम ये तो अपने,
पैरों पर सही से खड़ा है।

कम पैसा सही पर,
शरीर से तो यह भला है,
इन सब बातों को मन में रखते,
निकल पड़ा वह अस्पताल के रस्ते।

-सूर्या मिश्रा
वरिष्ठ अनुवाद अधिकारी,
रेल मंत्रालय, रेलवे बोर्ड



रेलवे बोर्ड में राजभाषा कार्यान्वयन समिति की 158वीं बैठक की झलकियां

अध्यक्ष एवं मुख्य कार्यपालक अधिकारी, रेलवे बोर्ड की अध्यक्षता में दिनांक 19 मार्च, 2026 को रेल भवन में राजभाषा कार्यान्वयन समिति की 158वीं बैठक का आयोजन किया गया। इस अवसर पर अध्यक्ष एवं मुख्य कार्यपालक अधिकारी, रेलवे बोर्ड ने समस्त रेलों पर हिंदी की प्रगति की समीक्षा की तथा राजभाषा पत्रिका 'रेल राजभाषा' के 144वें अंक का विमोचन भी किया। बैठक की कुछ झलकियां :-





संसदीय राजभाषा समिति की दूसरी उपसमिति द्वारा रेल कार्यालयों के निरीक्षण की झलकियां





संसदीय राजभाषा समिति की दूसरी उपसमिति द्वारा रेल कार्यालयों के निरीक्षण की झलकियां





संसदीय राजभाषा समिति की दूसरी उपसमिति द्वारा रेल कार्यालयों के निरीक्षण की झलकियां





रेलवे बोर्ड में आयोजित जयन्ती कार्यक्रम की झलकियां

दिनांक 23 अप्रैल, 2026 को रेल भवन के सम्मेलन कक्ष में सच्चिदानंद हीरानंद वात्साययन 'अज्ञेय' एवं महादेवी वर्मा जी की संयुक्त जयन्ती का आयोजन किया गया एवं उनकी कृतियों एवं रचनाओं की प्रदर्शनी लगाई गई। इस अवसर पर व्याख्यान के लिए आमंत्रित प्रोफेसर सुधा सिंह, दिल्ली विश्वविद्यालय एवं कुमार अनुपम, संपादक साहित्य अकादमी द्वारा लेखकों के जीवन एवं कृतित्व पर विचार व्यक्त किए गए।





भारतीय रेल वित्त प्रबंधन संस्थान, सिकंदराबाद में आयोजित अखिल रेल हिंदी प्रश्नोत्तरी कार्यक्रम-2025 की झलकियां

रेल कार्यालयों तथा रेल कर्मियों के मध्य हिंदी के प्रयोग-प्रसार को बढ़ावा देने के उद्देश्य से तथा कर्मचारियों में हिंदी के प्रति रुझान उत्पन्न करने के लिए रेल मंत्रालय (रेलवे बोर्ड) के तत्वावधान में भारतीय रेल प्रबंधन संस्थान, सिकंदराबाद में दिनांक 06 फरवरी, 2026 को अखिल रेल हिंदी प्रश्नोत्तरी कार्यक्रम-2025 का आयोजन किया गया, जिसमें समस्त क्षेत्रीय रेलों के कर्मचारियों ने बढ़-चढ़कर भाग लिया। कार्यक्रम के समापन के उपरान्त विजेता टीमों को पुरस्कार से सम्मानित किया गया। अखिल रेल हिंदी प्रश्नोत्तरी कार्यक्रम-2025 की कुछ झलकियां :-





आधुनिक रेल डिब्बा कारखाना, रायबरेली में आयोजित अखिल रेल हिंदी नाट्योत्सव-2025 की झलकियां

रेल कार्यालयों तथा रेल कर्मियों के मध्य हिंदी के प्रयोग-प्रसार को बढ़ावा देने के उद्देश्य से तथा कर्मचारियों में हिंदी के प्रति रुझान उत्पन्न करने के लिए रेल मंत्रालय (रेलवे बोर्ड) के तत्वावधान में आधुनिक रेल डिब्बा कारखाना, रायबरेली में दिनांक 22 मार्च, 2026 से 24 मार्च, 2026 तक अखिल रेल हिंदी नाट्योत्सव-2025 का आयोजन किया गया, जिसमें समस्त क्षेत्रीय रेलों के कर्मचारियों ने बढ़-चढ़कर भाग लिया। कार्यक्रम के समापन के उपरांत विजेता टीमों को पुरस्कार से सम्मानित किया गया। अखिल रेल हिंदी नाट्योत्सव की कुछ झलकियां :-





रेलवे बोर्ड में आयोजित पुस्तक चर्चा कार्यक्रम की झलकियां





हिमालय के देश में संस्कृतियों का संगम

पांचवें नेपाल-भारत साहित्य महोत्सव में भाग लेने के लिए काठमांडू के त्रिभुवन अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे पर जब उतरता हूं, तो याद आता है सन 1981 का यह छोटा-सा हवाई अड्डा। रेलवे स्काउट के रूप में एक दिन हवाई अड्डे का भ्रमण..... जीवन में पहली बार अंदर- बाहर से हवाई जहाज देखना..... कुर्सी पर बैठना.... पेटी बांधना.... केवल एक सुरक्षा कर्मी की उपस्थिति।

साहित्य महोत्सव का आयोजन तो पोखरा में था, लेकिन चौंतीस वर्ष बाद के काठमांडू को देखने का लोभ संवरण नहीं कर पाया, तो एक दिन पहले काठमांडू पहुंच गया कि देखा जाए कि राजतंत्र से लोकतंत्र की यह यात्रा राजधानी में क्या-क्या परिवर्तन लेकर आई है? सन 1981 में स्कूली दोस्तों का साथ था, तो आज मैं था बिल्कुल अकेला..... जीवन के इस पड़ाव पर मुझे 'सोलो ट्रेवलिंग' बेहद भाती है। ब्रिटिश कवि एवं उपन्यासकार लॉरेंस डरेल कहते थे कि 'यात्राएं हमें केवल बाहर स्पेस में ही नहीं ले जातीं, उन अज्ञात स्थानों की ओर भी ले जाती हैं, जो हमारे भीतर हैं।' और अकेले ही लंबी यात्राओं पर निकल जाना मुझे अपने अंदर झांकने एवं प्रवेश करने का अवसर प्रदान करता है। स्वयंभूनाथ, बूढ़ा नीलकण्ठ, इस्कॉन मंदिर, बौद्धनाथ स्तूप, गुहागिरी गौरीशंकर, घंटाघर नारायण हिती पैलेस, दरबार स्क्वैयर और अंत में पशुपतिनाथ मंदिर देखने पर अनुभव हुआ कि नेपाल, हिंदू एवं बौद्ध संस्कृति, आस्थाओं, परंपराओं

एवं विश्वासों का अनूठा संगम है, जहां एक ही परिसर में मंदिर और स्तूप दोनों स्थित हैं, लेकिन दुनिया के अन्य शहरों की तरह ही अब काठमांडू भी आधुनिकता एवं चकाचौंध से अछूता नहीं रहा है।



बागमती नदी के तट पर स्थित है.... पशुपतिनाथ मंदिर... मैं निःशब्द.. घाट की सीढ़ियों पर बैठा हूं.. .. सामने क्षितिज से अस्ताचलगामी सूर्य की किरणें सीधे बागमती नदी पर पड़ रही हैं। सिंदूरी आभा में जलती हुई चिताएं, दाह संस्कार की तैयारियां, शवों को कराया जाता स्नान..... जीवन की क्षणभंगुरता पल-पल याद दिलाते दृश्य। मैं चुपचाप उठता हूं और रात के अंधेरे में अपनी टैक्सी ढूंढने का प्रयास करता हूं।

रात सकुराथकाली किचन में खाना खाता हूं। थुकपा यहां का प्रसिद्ध भोजन है। मूल रूप से यह एक तिब्बती व्यंजन है।

गरम नूडलसूप में कई प्रकार की सब्जियां और कुछ पारंपरिक मसाले डाले जाते हैं। इसका स्वाद जहां लाजवाब है, वहीं यह काफी पौष्टिक भी होता है। हां, सामिष भोजन करना यहां खतरे से खाली नहीं है, क्योंकि फुटपाथ पर एक बोर्ड लगा हुआ था - काका को चुलो- यानि काका का चूल्हा। जरा मेन्यू पर





नजर डालिए..... पंडित भोजन, लोकतांत्रिक भोजन, गणतांत्रिक भोजन, सहमति भोजन, शाही भोजन, सर्वदलीय खाजा सेट, थकाली खाना, फापर को ढीडो, ताल को माछा, लोकल कुखुरा को मासु, हांस को छोइला, खाजा आईटमहरू। क्या आप लोकल कुखुरा को मासु का अर्थ जानते हैं? इसका अर्थ है, स्थानीय कुत्ते का मांस। मेनू देखकर काका के चूल्हे के दर्शन करने की हिम्मत नहीं हुई। भ्रमण के दौरान बाजारों में जब दुकानों के बोर्ड देखता था, तो अपनी भाषा और लिपि पर गर्व की अनुभूति से मन प्रसन्नता से भर उठता था। हिंदी की यह खासियत है कि जैसा हम बोलते हैं, वैसा ही लिखते हैं। बानगी देखिए, ब्यानर, प्रिंट, प्याड, भिजिटिंग कार्ड, टी-सर्ट, फोटो खिच्नेठाऊं आदि।



नेपाल में बड़ी संख्या में तिब्बती शरणार्थी रहते हैं। एक युवा तिब्बती डॉक्टर से मित्रता हुई, जिनकी लिखी तिब्बती दवाइयाँ भारत में आज भी खा रहा हूँ। पता चला कि तिब्बती भाषा की तीन चार लिपियाँ होती हैं। धार्मिक कार्यों के लिए अलग लिपि, अकादमिक कार्यकलापों हेतु अलग लिपि, तो व्यापारिक/ वाणिज्यिक व्यवहार हेतु अलग लिपि का प्रयोग किया जाता है। अगली सुबह हवाई अड्डे पहुंच

गया। काठमांडू से पोखरा छोटे-छोटे विमान चलते हैं। एक बार ऐसा एक विमान पोखरा की पहाड़ियों पर दुर्घटनाग्रस्त हुआ था, जिसमें सारे यात्री एवं चालक दल के सदस्य जलकर खाक हो गए थे। मन में भय तो था, लेकिन सोचा, हर बार थोड़े ही ऐसा होता है।

पोखरा का खूबसूरत नवनिर्मित हवाई अड्डा..... अखबार में पढ़ा था कि इसके निर्माण के लिए चीन से उधार लिया गया है और इसका निर्माण भी चीन ने ही किया है। पोखरा की एक ठंडी सुबह, बाहर निकलते ही पर्वतराज हिमालय के दर्शन होते हैं। गुनगुनी धूप में होटल के लिए प्रस्थान करता हूँ। पोखरा खूबसूरत झीलों एवं पहाड़ियों का शहर है, जो विदेशियों के बीच पर्याप्त लोकप्रिय है। तीन दिवसीय साहित्य महाकुंभ में जहां नेपाली साहित्य एवं संस्कृति को निकट से जानने का अवसर प्राप्त हुआ, वहीं नेपाली साहित्यकारों से विविध विषयों पर विस्तृत विचार-विमर्श भी संभव हुआ। आयोजन विश्वविद्यालय परिसर में था, तो नेपाली छात्रों से चलते-फिरते भेंट हो जाया करती थी। विधि संकाय के दो छात्रों ने मेरी कुछ कहानियों का नेपाली में अनुवाद भी किया और नेपाल की पत्र पत्रिकाओं में उनका प्रकाशन भी हुआ।

यहां के लोग बेहद सरल, श्रमजीवी एवं व्यवहार कुशल हैं। महिलाओं का कठोर परिश्रम देखकर तो आश्चर्य होता है। वे भारत को भारत नहीं, मित्र राष्ट्र कहते हैं। मन में इस विचार को लेकर मैं भारत लौट रहा था कि काश! अन्य पड़ोसी राष्ट्रों के साथ भी हमारी मित्रता इसी प्रकार की होती, तो 'वसुधैवकुटुंबकम्' की अवधारणा सच्चे अर्थों में सही साबित होती।

- डॉ. विपिन पवार
पूर्व निदेशक (राजभाषा)
रेल मंत्रालय, रेलवे बोर्ड



चक्का, सीटी और एक डिब्बे में कैद वो सात दिन

ट्रेन अपनी पूरी रफ्तार से गड़गड़ाती हुई, स्याह धुआँ उगलती, गाहे-ब-गाहे सीटी बजाती, पटरियों पर धड़धड़ाते हुए दौड़ रही थी।

मार्ग में बाइस्कोप सदृश पल-पल बदलते सम्मोहक नजारे थे। कहीं इधर-उधर बिखरे पहाड़, ऊँचे वृक्षों की लंबी कतारें तो कहीं पेड़ों पर घने पत्तों का चंदोबानुमा जाल, दरिया, झीलें, तालाब और उनकी स्वच्छ जल राशि में नीलवर्णी आसमान और सब्ज दरख्तों के प्रतिबिंब। यहाँ-वहाँ पोखर किनारे छितरी झोंपड़ियों, पक्के एक-दो मंजिला मकानों का सिलसिला रुक-रुक कर अनवरत जारी था।

एकाएक जंगलों को चीरती ट्रेन एक जबर्दस्त धक्के और चर्र-मर्र की कर्णकटु आवाज करती रुक गई। तभी किसी डिब्बे से आवाज आई, “लो भई, हो गया चक्का जाम!”

ये उन्नीस सौ चौहत्तर का मई का महीना था। क्रांतिकारी राजनेता, ट्रेड यूनियनिस्ट एवं पत्रकार जॉर्ज फर्नांडीस के आवाहन पर लोकोमोटिव रेलवे स्टाफ के अपने काम के घंटे तय करने, वेतन में बढ़ोतरी एवं अन्य कई मांगों की पूर्ति हेतु ‘चक्का जाम’ किया गया था।

एक प्राइवेट कंपनी में शाखा प्रबन्धक मेरे पिता का स्थानांतरण कटक से गुवाहाटी कुछ दिनों पूर्व हुआ था। उसी रूट की एक ट्रेन में पिता की कंपनी द्वारा आठ मई का फर्स्ट क्लास में आरक्षण तभी करवाया गया।

उन दिनों ऑल इंडिया रेडियो और समाचार पत्र ही संचार के एकमात्र साधन थे। रेल हड़ताल की तिथि आठ मई घोषित हुई थी, लेकिन कटक रेलवे स्टेशन पर फोन से पिछले दो-तीन दिनों से पूछताछ करने पर यही बताया गया कि उस दिन ट्रेन निर्धारित वक्त पर ही चलेगी।

पूरे देश में पहिले थमने की अफवाहों के बावजूद मेरे जिंदादिल, शिद्दत की जिजीविषा से लबरेज, हर पल रोमांचक जोखिम उठाने को तैयार पिता ने यात्रा के नियत दिन सफर पर जाने का निर्णय लिया।

हम पाँच भाई-बहन, माँ और पापा तड़के स्टेशन पहुँचे। हमारे पास अत्यधिक सामान था। दो मोटे बिस्तर-बंद, एक भूरा और दूसरा खाकी रंग का, पानी का बादला, स्टील का पाँच खानों का टिफिन कैरियर, लोहे के बड़े-बड़े बक्से, अटैची और कई बैगों के लावा लश्कर के साथ पापा ने तीन कुली किए।

प्लैटफॉर्म पर यात्रियों की सामान्य गहमागहमी थी। यात्रियों की बेतरतीब भीड़ सामान उठाए तेज चाल से विभिन्न दिशाओं में खड़ी ट्रेनों की ओर बढ़वासा दौड़ भाग रही थी। जगह-जगह पर विभिन्न खाद्य सामग्री, किताबें, पत्रिका और अन्य सामान बेचते ठेले और फेरी वाले खड़े थे। कई फेरी वाले स्टेशन पर खड़ी ट्रेनों के यात्रियों को लुभाने के लिए एक लय में अपनी यांत्रिक आवाज में चिल्लाते हुए अपना विविध सामान बेच रहे थे। लाल कुर्ता पहने और बाँहों पर बड़ा सा पीतल का सुनहरा बिल्ला लगाए कुलियों के झुंड यात्रियों की प्रतीक्षा में खड़े थे। प्लैटफॉर्म पर यहाँ-वहाँ कुछ कुली यात्रियों का सामान उठाए अथवा ठेला गाड़ी में लादे ट्रेनों की ओर तेजी से चलते नजर आए।

तीनों कुलियों ने फुर्ती से भारी-भरकम बक्से सिर पर लादे, कुछ बैग दोनों कंधों पर लटकाए, साथ ही दोनों हाथों में कई अदद पकड़े और तेज चाल से भीड़ में रास्ता बनाते हुए हमारे आगे-आगे हमारी ट्रेन की





और चल पड़े। एक बहन और भाई माँ और पिता की गोद में और मैं सबसे बड़ी, दो छोटी बहनों का हाथ कस कर थामे कुलियों की तेज चाल से अपने कदम मिलाते हुए ट्रेन में हाँफते हुए चढ़े और अपनी उखड़ी साँसों को संयत करते हुए बड़े सुकून से फैल कर नीचे वाली दो बर्थों पर बैठ गए। कुलियों और पापा ने असबाब दोनों बर्थों के नीचे और कुछ ऊपर वाली बर्थों पर जमा दिया। पापा ने कीमती सामान वाले बक्सों और सूटकेसों को निचली बर्थ के पाये से एक लोहे की चेन से बांध उसमें ताला जड़ दिया।

मुझे अच्छी तरह से याद है, कटक से हमारी ट्रेन नियत वक्त पर चल दी थी। थोड़ी देर चलने के बाद वह अचानक बीच जंगल में थम गई और फिर कुछ मिनटों में रेंगते हुए चल पड़ी। ऐसा कई बार हुआ और फिर जरा देर और चलने के पश्चात वह एक स्टेशन पर रुक गई, जहाँ पता चला कि 'चक्का जाम' चालू हो गया है।

लगभग दोपहर हो चुकी थी, और छोटे भाई बहनों की "भूख लगी है" सुन माँ ने सुगंध उड़ाते टिफिन कैरियर से पूड़ी, आलू की कचौड़ी, आलू की ही चटखारेदार सब्जी, आम, मिर्ची, टेंटी का अचार हम सब को टिफिन की छोटी प्लेटों में दिया।

मैं कुछ अनमनी-सी अपनी शिशु अनुजा को गोद में ले कर खिड़की के सामने आम के खट्टे-मीठे अचार के साथ कचौड़ी खाती हुई बैठी हुई थी। कटक में अपने स्कूल और पास-पड़ोस की प्रिय सखियों से हमेशा के लिए बिछुड़ने के खयाल से एक अबूझ उदासी मेरे जेहन पर तारी थी।

तभी मैले-कुचैले, फटे-चिथड़े कपड़ों में एक पागल सा वीभत्स मुख-मुद्रा वाला भिखारी हाथ में लोहे का एक कटोरा खिड़की पर जोर से टनटनाते हुए अकस्मात मेरे सामने प्रकट हुआ। उसे देख कर अनायास मैं चीखी और क्षणभर में उसने झपट्टा मार मेरे हाथ से कचौड़ी छीन, मेरे ही सामने खड़े-खड़े एक विद्रूप हंसी के साथ मुझे घूरते हुए उसे खाने

लगा। मेरी चीख का उसपर कोई असर न था।

उस डरावने, बेपनाह मैल से चीकट चेहरे और भूख के त्रास की अदम्य पीड़ा का आभास देती उसकी गड्ढों में धँसी, सूनी, उन्मादग्रस्त आँखों को मैं कभी नहीं भूल पायी।

पिता ने उसे कुछ पूड़ी-कचौड़ी और सब्जी देकर कर वहाँ से हटाया।

उस दिन न जाने कौन से स्टेशन से हमारी ट्रेन देर शाम तक रवाना हुई। रुकते रुकते, कभी तेज तो कभी धीमे, कुछ घंटों पश्चात ट्रेन फिर अगले स्टेशन पर ठीक एक किताबों के स्टॉल के सामने ठहर गई। बिल्ली के भागों मानो छींका फूटा। मुझे आज तक याद है, आनन-फानन में मैं पिता के साथ ट्रेन से उतर कर अपनी प्रिय लेखिका शिवानी के पाँच-छह उपन्यास और कई पत्रिकाएँ जैसे पराग, चन्दामामा, नंदन आदि खरीद लाई और अगले ही क्षण उन सरस किताबों की तिलिस्मी दुनिया में खो गई।

रात को हम अपनी-अपनी बर्थ पर सोये ही थे कि कुछ ही देर में धप्प की तेज आवाज हुई और मैं चौंक कर उठ बैठी। देखा तो ऊपर की बर्थ पर पिता के साथ सोता मेरा तीन वर्ष का भाई धड़ाम से नीचे मुँह के बल गिर गया।

भाई की नाक से खून बह रहा था और वह बेतहाशा रो रहा था। तभी किस्मत से ट्रेवलिंग टिकट एग्जामिनर यानि कि टी टी महोदय ट्रेन में चक्कर लगाते हुए शोर सुनकर हमारे केबिन में आए और बताया कि एक पिछले केबिन में कोई डॉक्टर दंपति यात्रा कर रहे हैं। पापा वहाँ भागे गए और कुछ ही देर में सहृदय असमिया डॉक्टर पति-पत्नी गहरी नींद से उठ कर अपनी फर्स्टएडकिट लेकर आए और जार-जार रोते चिंघाड़ते भाई को प्राथमिक चिकित्सा दी।

वह डॉक्टर जोड़ी अपने पुत्र-पुत्री के साथ यात्रा कर रही थी।



उस पूरी यात्रा के दौरान हम उस डॉक्टर दंपति और उनके दोनों किशोर बच्चों, पलाश और हिना के बेहद करीब आ गए थे। कभी मैं अकेली उनके केबिन में चली जाती या कभी हिना अपने भाई के साथ हमारे केबिन में आ जाती और हम तीनों मिल कर गपियाते या फिर शतरंज, लूडो या ताश खेलते।

ट्रेन में गुजरे वो दिन मैं कभी नहीं भूल पाऊँगी। पढ़ाई-लिखाई से पीछा छूटा हुआ था। ट्रान्जिस्टर पर सदाबहार पुराने गाने, बिनाका गीत माला और नाटकों का दैनिक कार्यक्रम, हवामहल सुनते हुए, अपनी पसंदीदा किताबें पढ़ते हुए या कभी पलाश और हिना के साथ गपियाते, विभिन्न गेम्स खेलते हुए, माँ के हाथ की बनी मठरी, और आम का स्वादिष्ट अचार, मीठे और नमकीन शकलपारे, और अपनी पसंदीदा क्रीम बिस्किट्स टूंगते हुए वो एक हफ्ता मानो पलक झपकते ही गुजर गया।

ओडिशा के ग्रामीण क्षेत्र से जब ट्रेन रेंगते हुए गुजरती, छोटे बच्चे हाथ हिला कर हमें टाटा करते और कुछ दूर ही खेतों पर शायद उनके माता-पिता, चाचा, ताऊ काम करते दिखते। सघन वृक्षों की छाँह में सुस्ताते लोगों और खेलते बच्चों की झलक दिखती। औरतें बिन ब्लाउज के लेकिन साड़ी से कस के पूरी तरह बदन ढाँपे और धोती या गमछा लपेटे पुरुष खेतिहर अच्छी-खासी धूप में खेतों में काम करते दिख रहे थे। अनेक खेतों में कटाई के लिए तैयार लहराती पीली सरसों की फसल का खूबसूरत मंजर मेरे प्रकृति प्रेमी मन में एक अनोखी पुलक जगा रहा था। कहीं-कहीं गांवों के पोखरों में जाल डाले मछली पकड़ते लोग हमें नजर आए।

यहाँ-वहाँ जंगली क्षेत्रों में नुकीली पत्तियों वाले बाँस के झुमट और नारियलों से लदे उनके ताड़ जैसे लंबे वृक्षों की कतारें नजर आईं। खेतों में खड़े गँटीले गन्नों की लंबी पत्तियाँ हवा में झूमती भी दिखीं।

मैंने गौर किया, जब भी हम बच्चे ताश खेलते, पलाश चाल चलते वक्त मुझे किसी विशेष पते को फेंकने

का इशारे करता। परिणामस्वरूप मैं हमेशा बाजी जीत जाती और हिना खिसिया कर हम दोनों से कुट्टी कर बैठती। मेरे बहुत मनाने पर भी अगला खेल खेलने के लिए नहीं मानती। फिर जब पलाश उसकी बहुत मान-मनौवल करता, मैं उसकी खुशामद करती तभी वह अगली बाजी खेलने के लिए राजी होती।

ट्रेन अभी भी कुछ स्टेशनों पर रुकते हुए कछुए की मंथर गति से चल रही थी। जब मर्जी कहीं भी जिद्दी बच्चे की तरह रुक जाती।

अगले दिन शाम को बहुत इंतजार के पश्चात हमारी ट्रेन चली और कुछ ही देर बाद एक सुनसान मैदानी इलाके में झटके से रुक गई, जहाँ मैंने बरसात की मद्धिम झड़ी के बीच एक ऐसा अनोखा दृश्य देखा, जिस की स्मृति ठीक पाँच दशकों के बाद आज भी मेरे रोंगटे खड़े कर देती है।

शाम के झुटपुटे में आसमान से मंद-मंद गिरती रुपहली फुहारों के मध्य सतरंगी आभा बिखेरता इंद्रधनुष सामने क्षितिज पर अपनी पूरी शान से चमक रहा था। उस वीरान और धूसर मैदानी इलाके में कुछ दूरी पर कई भूरे-काले रंग के सियार तन-मन में सिहरन पैदा करने वाली हुआ-हुआ करते हुए इधर-उधर विचरण कर रहे थे। उनकी सायरन जैसी भयावह आवाज पूरे वातावरण में निरंतर गूँज रही थी।

उस खौफनाक दृश्य की स्मृति मानो जेहन पर हमेशा के लिए चस्पाँ हो गयी।

उसी दिन रात तक घर का खाना खतम हो गया और पापा ने पैंट्री कार से खाना ऑर्डर किया। उन दिनों दूरगामी ट्रेनों में पैंट्री कार हुआ करती थीं। उस वक्त पैंट्री कार के कर्मचारी आयताकार कटोरियों के खानों वाली ट्रेनुमा स्टील की थालियों में खाना देते थे।

जहाँ माँ को प्याज-लहसुन से सख्त नफरत थी, वहाँ पूरे-पूरे पखवाड़े ऑफिस के दौरों पर होटलों में खाने के अभ्यस्त पिता को प्याज और लहसुन बेहद प्रिय थे।



एक ओर हम बाप-बेटी को जहाँ प्याज-लहसुन वाली ट्रेन की सब्जी बेहद सुस्वादु लगी, वहीं मेरी माँ का जी उसे देखते ही घबराने लगता। सो पिता ने कुछ एक्स्ट्रा रुपये पैट्री कार के कर्मचारी को थमा कर उनसे माँ के लिए दोनों वक्त उबले आलू या दही और अचार लाने की मांग की। पिता ने हम दोनों की सब्जी में लाल मिर्च और प्याज का अतिरिक्त तड़का लगाने की फरमाइश की। पैट्री कार के कर्मचारियों को दिये एक्स्ट्रा रुपयों का कमाल था कि उस दिन के बाद से वे हमारे प्रति बेहद उदार हो उठे थे। पिता के मुँह से बात निकलने की देर होती और वह चीज आ जाती। पूरे सात दिन हमें नन्ही बहन के डब्बे के दूध के लिए गरम पानी, छोटे भाई के लिए बिना मिर्च वाली ऑमलेट और मेरे और पिता के लिए एक्स्ट्रा तड़के वाली सब्जियाँ नियमित रूप से मिलती रहीं।

हमारी ट्रेन में अधिकतर चटपटी परवल और आलू की सब्जी आती, जिसे हम बाप-बेटी चटखारे मार के खाते और मेरी सहनशीलता की प्रतिमूर्ति माँ बिना माथे पर शिकन लाये बस दही, अचार और उबले आलू के नमक-मिर्च पड़े भरते पर पूरे हफ्ते जिंदा रहीं। आज भी सुगंधित महक उड़ाती गरमा-गरम प्याज के एक्स्ट्रा तड़के लगी, सुर्ख लाल रंगत की गाढ़े शोरबे वाली सब्जी की याद जेहन में यूँ तरो-ताजा है, मानो कल की ही बात हो।

सुबह के नाश्ते में पिता अक्सर हम बाप-बेटी के लिए यथेष्ट प्याज, हरी मिर्च, हरा धनिया पड़ी लज्जतदार ऑमलेट मंगवाते जिसे हम छक के खाते।

कभी चलते कभी रुकते यात्रा का तीसरा दिन आ पहुँचा। अब रेल बंद का प्रभाव तेज होने लगा। इसकी वजह से ट्रेनों और प्लेटफॉर्म पर सफाई व्यवस्था बदहाल हो उठी थी। हर स्टेशन पर गंदगी के ढेर नजर आने लगे। पिछले दो दिनों में हमारे केबिन में भी कचरे का ढेर लग गया और केबिन से अटैचडवॉश रूम भी गंदा हो गया था। पिता ने एक

भिखारी से कुछ रुपयों की एवज में केबिन में झाड़ू लगवाई, वॉशरूम साफ करवाया और यात्रा खतम होने तक किसी न किसी से रोज वहाँ की सफाई करवाते रहे।

उन दो-तीन दिनों में ही मैं, पलाश और हिना बहुत करीब आ गए थे। मैंने दसवीं कक्षा की परीक्षा दी थी। पलाश बारहवीं का इम्तिहान दे चुका था।

मैंने गौर किया, पलाश हमेशा मेरे नजदीक बैठने की कोशिश करता, लेकिन माँ और पापा के सामने मुझे यह असहज कर जाता और मैं उससे दूर दूसरे कोने में जा कर बैठ जाती। मेरा वहम था या वास्तविकता, मैं समझ नहीं पा रही थी। जैसे-जैसे वक्त बीत रहा था, मुझे उसकी आँखों में अपने लिए चाहत का भाव नजर आता। खैर, एक बात तो तय थी, वह बहाने-बहाने से सायास मेरे इर्द-गिर्द मँडराता।

मैं अपनी कहूँ तो मन ही मन उसका मेरे प्रति इतना झुकाव मुझे भी गुदगुदाने लगा था और मैं जब भी उसके बारे में सोचती, मन में एक अनोखी तरंग जग जाती जो अपने आप में एक मीठा सा एहसास था।

अब ठीक से याद नहीं, पर हमारी ट्रेन जगह-जगह रुकते रुकते यात्रा के चौथे या पाँचवे दिन अब शायद पश्चिमी बंगाल के इलाकों से गुजर रही थी। एक फेरीवाला केबिन के बाहर ग्राहकों के सामने मुरमुरों में मिर्च, मसाले, नींबू, प्याज मिला कर कुछ ऐसे अनोखे अजीबोगरीब लहजे में शक्ल बनाते हुए मजेदार ढंग से “झाल मूड़ी” “झाल मूड़ी” चिल्लाते हुए बेच रहा था, जिसे देख कर हम तीनों बच्चे बरबस खिलखिला पड़े। बंगाली भाषा में मिर्च मसालेदार मुरमुरों को झाल मूड़ी कहा जाता है।

उसी रात को ट्रांजिस्टर पर कुछ स्टेशनों पर पत्थरबाजी की खबर सुन कर पापा ने केबिन की खिड़कियों के शटर बंद कर दिये। हम सब डरे-सहमे केबिन में बंद थे। तभी एक पत्थर हमारी धीमे-धीमे रेंगती ट्रेन की खिड़की के शटर पर लगा। पापा और माँ के चेहरों



पर भय की परछाई साफ दिख रही थी। आज तक याद है, उन क्षणों में रात के सन्नाटे में मेरे भयाक्रांत दिल की धड़कन गड़गड़ाते पहियों की रफ्तार से कहीं बहुत अधिक हो उठी।

कुछ ही देर में ट्रेन ने गति पकड़ ली। मैं और माँ पापा बहुत देर तक जागते रहे। कुछ ही समय में मैं नींद के आगोश में समा गई।

अगले दिन, शायद यात्रा के छठे दिन हमने असम में प्रवेश किया। वहाँ हमने लोगों की वेशभूषा में आमूल-चूल बदलाव देखा।

वहाँ के किसानों ने एक लाल बॉर्डर वाला सफेद गमछा सिर या कमर पर लपेटा हुआ था और औरतों ने साड़ी को कुछ अजीब तरह से बाँध रखा था। डॉक्टर आंटी ने बताया कि उन्होंने वहाँ की पारंपरिक पोशाक मेखला चादर पहनी हुई थी। हमें वहाँ के चमकीले पत्तों वाले कुछ पेड़ देखने को मिले जिनके बारे में उन्होंने बताया कि वे असम के सबसे लंबे वृक्ष हैं, जो पवित्र माने जाते हैं। वहीं हमने जिंदगी में पहली बार नारियल जैसे लंबे सुपारी के पेड़ भी देखे।



खेतिहर खिड़की के पार रबी फसल काटते हुए नजर आ रहे थे। कहीं-कहीं हरे-भरे चाय बागानों में महिला कामगार एक लंबी सी टोकरी सिर पर अड़ी एक डोरी की मदद से अपनी पीठ पर टिकाये सधे हाथों और द्रुत गति से चाय की पत्तियाँ तोड़ती नजर आईं।

देहाती इलाकों में ओडिशा के फूस या खपरैल की ढालू छत की बजाय अब हमें असम में लकड़ी के

खंभों और फ्रेम पर टिके मिट्टी की दीवारों और टीन की ढालू छत वाले मकान दिखने शुरू हो गए। ओडिशा के सघन जंगलों की हरियाली की तरह असम में भी बहुत हरियाली नजर आई।

असम में पहाड़ी इलाके की बेहद घुमावदार रेल लाइन पर जब ट्रेन पटरियों पर मुड़ी, खिड़की के पार देखता हुआ मेरा भाई तुतलाते हुए ताली बजाते हुए चिल्लाया, “देखो! वो दूल हमाली छुक-छुक रेल गाली के दिब्बे दिख लहे हैं।” मैंने बाहर झाँक कर देखा, वाकई में सर्पिल रेल लाइन पर चलती हमारी रेलगाड़ी के अगले डब्बे दिख रहे थे।

दिन पर दिन हड़ताल का प्रभाव बढ़ता जा रहा था, जिसकी वजह से अब स्टेशन पर यात्रियों, कुलियों, विभिन्न चीजें बेचने वाले वेंडर दिखने बंद हो गए थे और अधिकतर प्लेटफॉर्म वीरान नजर आ रहे थे। नजर आते तो बस पुलिसकर्मी, जो प्रशासन द्वारा तैनात किए गए थे।

पूरी दुनिया से कटे हुए मानो हम घूमते पहियों पर एक अलग दुनिया बसा बैठे थे। यूँ लगने लगा था, जैसे हम हमेशा से हिचकोले खाती चलती ट्रेन

पर रहते आए थे। उस वक्त मात्र हमारा ट्रांजिस्टर बाहरी दुनिया की जानकारी का एकमात्र साधन था।

अगले दिन हमारी ट्रेन एक स्टेशन पर रुक गई। उस दिन से पैट्री कार ने किसी वजह से हम यात्रियों को खाना देना बंद कर दिया। दोपहर के दो बजने आए और हम बच्चे भूख से परेशान थे। प्लेटफॉर्म पर खाद्य सामग्री की सारी दुकानें बंद थीं। तभी हमने देखा, कुछ हुड़दंगी युवा यात्रियों ने प्लेटफॉर्म पर बंद पड़े सभी खाद्य सामग्री के स्टॉल और दुकानों के



दरवाजे पीटना शुरू कर दिया और जबर्दस्त उत्पात मचाते हुए उन पर लगे तालों को तोड़ कर उसमें रखी खाद्य सामग्री लूटना शुरू कर दिया। प्लेटफॉर्म पर उस लूटपाट का वह डरावना मंजर भी मैं कभी नहीं भूल पाई।

तभी कुछ ही देर में वहाँ पुलिस कर्मी आ गए और उन्होंने व्यवस्था बहाल की।

उस कठिन घड़ी में उस स्टेशन पर खड़े कुलियों में से एक सहृदय कुली ने हमारी बहुत मदद की। पिता से हम बच्चों के भूखे होने की बात सुन वह कुछ ही देर में अपने रेलवे क्वार्टर से अपनी पत्नी से आधा कनस्तर भर लिट्टियाँ, स्वादिष्ट आलू का चोखा और आम का अचार ले आया, जिसका दैवीय स्वाद आज तक मेरी जिह्वा पर धरा है। गुवाहाटी पहुँचने तक वह खाना हमारे काम आया।

सुबह सब कुछ सामान्य था। वो हमारी यात्रा का आखिरी दिन था। हम गुवाहाटी के करीब आ पहुँचे थे।

लोहे के पुल पर टड़ंग-टड़ंग की टंकारेदार आवाज करती हुए सरपट दौड़ती ट्रेन विशाल ब्रह्मपुत्र नदी के ऊपर पुल से गुजर रही थी, कि एकाएक मेरा छोटा भाई बड़ी मासूमियत से बोला, “अगल हमाली टलेन अभी नदी में गिर जाये तो क्या होगा?” उसकी इस मीठी बोली पर हम सब बरबस मुस्कुरा दिये और पापा ने हँसते हुए उससे कहा, “शुभ-शुभ बोल बेटा, ऐसा नहीं कहते।”

माँ ने कुछ सिक्के नदी में डाले और हमारे पूछने पर बताया कि यँ नदी में सिक्के डालने से मनोकामना पूरी होती है। उनकी देखादेखी मैंने और मेरी छोटी बहनों ने भी कुछ सिक्के बहते पानी में फेंके।

हमारा गंतव्य अब आने ही वाला था। डॉक्टर दंपति और पलाश, हिना अपना सामान लेकर हमारे ही

केबिन में आ गए थे।

बड़े और हम बच्चे आपस में बातचीत में मगन थे।

इन पिछले सात दिनों में पलाश और हिना से इतनी आत्मीयता हो गयी थी कि उनसे आगत बिछोह के बारे में सोच-सोच कर कलेजा मुँह को आ रहा था। खास कर जब भी मेरी नजर पलाश पर पड़ती, मुझे लगता मानो उससे दूर हो कर मैं जिंदा न रह पाऊँगी। खयालों ख्वाबों और हॉर्मोनल उथल-पुथल की उस कमसिन उम्र में मेरा उस पर हुआ क्रश सिर चढ़ कर बोल रहा था।

तभी सब की नजरें बचा कर पलाश ने अपनी मुट्ठी में बंद अपने लैंड लाइन फोन नंबर लिखी एक कागज की पर्ची मेरे हाथ में सरका दी। मैंने देखा विदाई की उस बेला में अतीव भावोद्वेग से उसकी आँखों में मोती झलक आए।

मैंने नम आँखों और भराए गले से उसकी दी हुई पर्ची मुट्ठी में भींचे उससे, हिना और अंकल-आंटी से विदा ली।

गुवाहाटी का प्लेटफॉर्म भी रेलवे स्ट्राइक की वजह से सुनसान था। वहाँ मात्र ट्रेन से उतरने वाले यात्री, कुछ कुली और पुलिस कर्मी थे।

नए घर में जाने के लिए हम टैक्सी में बैठे। इतनी लंबी रेल यात्रा के बाद धुएँ की कालिख की हल्की परत चढ़े चेहरे और कपड़ों के साथ टैक्सी में बैठ कर भी यँ लग रहा था मानो मेरा पूरा वजूद हिल रहा हो।

उस यादगार सप्ताह के दौरान वह केबिन हमारी सुकूनदायी शरणस्थली बन गया, जहाँ हम बाकी की दुनिया से कटे हुए अपने आप में मगन और महफूज थे। हम विभिन्न प्रान्तों की यात्रा करते हुए न जाने कितनी संस्कृतियों से रू-ब-रू हुए, कितने दृश्यों को आत्मसात किया और न जाने कितने अनुभवों



को जिया। जिंदगी के अमूमन हर रंग, हर भाव को महसूस किया।

आज जब मैं उन बीते दिनों की यादों को लैपटॉप पर यात्रा वृत्तांत का रूप दे रही हूँ, लगभग पाँच दशकों के बाद भी वे मानस चक्षुओं के समक्ष यूँ जीवंत हो उठी हैं, मानो कल की ही बात हो।

खट्टी-मीठी यादें सँजोये, कभी रुके-थमे, कभी दौड़ते पहियों पर डिब्बे में कैद उन सात दिनों की रोमांचक रेल यात्रा में आखिरी साँस तक नहीं भूल पाऊँगी।

- रेणु गुप्ता
जयपुर

सपने



रात जो बुनती मेरे सपने
इक सुबह तक आँख में पलती,
दिन की उलझन में फँस कर
रेशा-रेशा खुल जाते हैं।

शाम को जब घर पहुँचूँ,
दिन की आपा-धापी में फिर
अंदर कुछ बिगड़ते देखूँ,
सपनों को सिमटते देखूँ।

जो इक रोज फुर्सत से बैटूँ,
सोच सपने को पूरा बुनने
स्वयं को देखूँ पूर्ण जहाँ,
बस मिले वो मुझे वो चैन कभी।

-अंजलि
गुरुग्राम, हरियाणा

छुक-छुक में बसता हिंदुस्तान



छुक-छुक करती पटरियों पर, सपनों को ले जाती रेल,
गांवों से शहरों तक अपना, प्रेम-संदेशा लाती रेल।
किसी जवान की आंखों में, सीमा का विश्वास लिए,
किसी किसान की थैली में, मेहनत की मिठास लिए।
बचपन की खिड़की से झाँकें, खेत, नदी, पहाड़ सभी,
चलती रेल सिखा जाती है, अपनेपन का पाठ अभी।
स्टेशन-स्टेशन जीवन जैसे, रुकता फिर चल पड़ता है,
हर मुसाफिर अपने भीतर, इक छोटा संसार रखता है।
थके हुए मजदूरों को भी, आशा का आकाश मिले,
रेल नहीं बस धड़कन है ये, जिससे भारत खास मिले।
सर्द सुबह की चाय महकती, सीटी गूँजे दूर तलक,
रातों में भी जाग रही है, उम्मीदों की ज्योति चमक।
मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारों का, संगम इसमें दिखता है,
हर भाषा का हर इंसां भी, इसको अपना लगता है।
जब तिरंगा लेकर चलती, वीर जवान घर आते हैं,
पूरे भारत के चेहरे पर, गर्व के दीप जगमगाते हैं।
लाख कठिन राहें हों फिर भी, रुकना इसने सीखा कब,
भारतीय रेल कहाती है, भारत मां का चलता रथ।
पटरियों पर दौड़ रही है, समय और विश्वास लिए,
छुक-छुक करती भारतीय रेल, पूरा हिंदुस्तान लिए।

प्रवीण कुमार सहगल
फरीदाबाद (हरियाणा)



बीजक की यात्रा

जी हां, मैं एक बीजक हूँ बीजक मतलब इनवॉइस। यात्री को यात्रा करने के लिए जिस प्रकार टिकट दिया जाता है ठीक उसी प्रकार माल यातायात को रेल द्वारा भेजने के लिए बीजक जारी किया जाता है। जानिए मेरी अर्थात् बीजक (invoice) की अब तक की यात्रा के बारे में...

बीजक वह प्रपत्र है जब कोई ग्राहक रेलवे के माध्यम से अपना सामान एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजना चाहता है तो रेलवे की तरफ से यह रसीद के तौर पर ग्राहक को दिया जाता है। गंतव्य पर जब सामान अर्थात् माल पहुंच जाता है तब ग्राहक अथवा उसके अन्य किसी आधिकारिक व्यक्ति द्वारा बीजक की प्रतिलिपि प्रस्तुत करने पर उसे माल की सुपुर्दगी की जाती है।

इस कहानी की शुरुआत 80 के दशक से होती है जब यह बीजक कई रंगों का होता था। यह रंग बिरंगा बीजक यदि यातायात इतर रेलवे के लिए बुक किया जाता था, अर्थात् कोई ग्राहक किसी एक रेलवे जोन किसी स्टेशन से दूसरे रेलवे जोन के स्टेशन के गंतव्य के लिए माल बुक करता था, उसके लिए उसे गुलाबी रंग का बीजक प्रयोग में लाया जाता था, जबकि यदि एक ही रेलवे के भीतर अर्थात् बुकिंग स्टेशन और गंतव्य स्टेशन दोनों किसी रेलवे के एक ही जोन में आते हैं, के लिये माल यातायात बुक होता था तो वह सफेद रंग के बीजक के द्वारा किया जाता था। मिलिट्री के ट्रैफिक के लिए हरे रंग का बीजक इस्तेमाल किया जाता था। दूर से ही बीजक के रंग को देखकर यातायात के प्रकार का पता चल जाता था। शुरुआती दौर में बीजक की बुकिंग में स्टेशन से गंतव्य तक की दूरी की गणना एक कठिन कार्य थी। प्रत्येक रेलवे की अपनी एक दूरी पुस्तिका (distance table) होती थी और हर दो रेलवे के

बीच में एक ट्रांशिपमेंट स्टेशन होता था। यदि माल एक ही रेलवे जोन के अंदर बुक होता था तो वह उसे उसी रेलवे की दूरी पुस्तिका के आधार पर दूरी की गणना कर ली जाती थी। परंतु यदि माल एक



रेलवे जोन के स्टेशन से दूसरी रेलवे जोन के स्टेशन के लिए बुक होता था तो दूरी की गणना करना अधिक जटिल प्रक्रिया थी। उसमें बुकिंग स्टेशन के रेलवे की पुस्तिका के साथ पहले ट्रांशिपमेंट स्टेशन; वो स्टेशन जो दोनों रेलवे के अधिकार में आता है, तक दूरी ली जाती थी और फिर ट्रांशिपमेंट को जोड़ते हुए गंतव्य स्टेशन तक की दूरी निकाली जाती थी।

यह प्रक्रिया तब और जटिल हो जाती थी, जब यातायात के गंतव्य स्टेशन तक के मध्य में यदि ऐसे किसी रेलवे जोन के स्टेशन को क्रॉस करता था; अर्थात् वो जोन जो न तो माल यातायात को बुक करती है और न ही माल को उतारती है तो इस स्थिति में ट्रांशिपमेंट से मध्य क्रॉसिंग रेलवे की दूरी ली जाती थी और अंत में एक बार फिर मध्य में आने वाले रेलवे और गंतव्य रेलवे के बीच के कुल दूरी को जोड़कर यातायात की दूरी तय की जाती थी। यह वास्तव में एक जटिल प्रक्रिया थी। इसके साथ ही अनेक प्रकार के अवॉयडिंग लाइन्स, रेशनलाइसड रुट्स अर्थात् जो भी ट्रैक यात्री यातायात के लिए व्यस्त होता था, उसे माल यातायात के लिए अवॉयड कर दिया जाता था, उस स्थिति में माल यातायात को घुमा करके ले जाया जाता था। इस प्रकार के नियमों का भी पूर्ण रूप से पालन करना आवश्यक था। यह नियम भी साल में कई बार बदल जाते थे, जिनके लिए कमर्शियल और लेखा



के कर्मचारियों को अधिक सतर्क रहना होता था। इन बदले हुए नियमों की जानकारी रेट अड्वाइस और सरकुलर्स के माध्यम से मिलती थी, जो कि डाक द्वारा विभिन्न कार्यालयों में भेजे जाते थे।

90 की शुरुआती दशक में या कहें 80 के दशक की विदाई के साथ रेलवे को आर्थिक स्वावलम्बी बनाने के लिए अन्य योजनाओं के साथ-साथ प्राइवेट भागीदारी ने रेलवे के साथ हाथ मिला कर माल ढुलाई के कार्य क्षेत्र में पदार्पण किया। कंटेनर कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया ने माल ढुलाई के लिए कंटेनर द्वारा माल ढुलाई का कार्य प्रारंभ किया। इसके बीजक बिल्कुल अलग तरह से हरे रंग के होते थे। वर्गाकार और यह बीजक कंटेनर के कर्मचारी स्वयं बनाते थे। कंटेनर यातायात के बीजकों की गणना बिल्कुल अलग थी। यह सामान्य माल यातायात से भिन्न कंटेनर द्वारा माल ढुलाई करते थे और इसके लिए 20 फीट और 40 फीट के कंटेनर को उपयोग में लाया जाता था। इस कंटेनर ट्रैफिक के माल भाड़ा की गणना बिल्कुल अलग थी और यह प्रति कंटेनर के आधार पर की जाती थी और इनके कंटेनर की क्षमता भी 20 टन और 40 टन थी। शुरुआती दौर में कंटेनर यातायात ने भारतीय रेलवे में माल भाड़ा वृद्धि कर अपना एक सुरक्षित स्थान बना लिया। परंतु इस समय में रेलवे की पकड़ कंटेनर पर कम थी। कंटेनर कॉर्पोरेशन एक कॉर्पोरेट की तरह कार्य कर रहा था और कामर्शियल विभाग का ज्यादा हस्तक्षेप था। चूंकि बीजक की बुकिंग का कार्य स्वयं कंटेनर के कर्मचारी कर रहे थे, परंतु ये बीजक जांच के लिए यातायात लेखा कार्यालय में आते थे और इन रेलवे के कर्मठ सिपाहियों ने धीरे-धीरे अपनी कर्मठता, प्रतिबद्धता और पैनी पकड़ से कंटेनर यातायात में अनेक प्रकार के सुधार करवाने का कार्य किया। इस प्रक्रिया के दौरान यह महसूस किया जाने लगा कि कमर्शियल गतिविधि रेलवे को स्वयं करनी चाहिए। परंतु इतने बड़े स्तर पर कंटेनर द्वारा दिया जाने वाला माल भाड़ा के प्रतिरूप को एक दिन में बदला नहीं

जा सकता था, परंतु यह परिवर्तन अपरिहार्य था।

समय के साथ-साथ रेलवे ने भी अपने माल भाड़ा बुकिंग शैली में परिवर्तन किया और कंप्यूटर के युग में कंधे से कंधा मिलाकर के अपने माल भाड़ा बुकिंग और दस्तावेजों की प्रक्रिया में एक बड़ा परिवर्तन किया। जिसके तहत जो बीजक मानवीय रूप से तैयार किए जाते थे और जिनकी जांच का कार्य भी पूर्ण रूप से मानवीय आधार पर सुनिश्चित होता था, उसे कंप्यूटर द्वारा जारी कंप्यूटराइज्ड बीजक से किया जाने लगा। यह सच है कि यह एक दिन का कार्य नहीं था। एक बहुत लंबे समय तक क्रिस (CRIS) ने रेलवे के साथ अनेक स्तर पर बैठकों और अनेक संशोधन के साथ कंप्यूटराइज्ड बीजक का प्रारूप तैयार किया और यह मेहनत रंग लाई। यद्यपि यह समय बहुत कठिन था, जब वाणिज्य विभाग के कर्मचारियों के लिए जो बीजक बना रहे थे, लेखा विभाग के उन कर्मचारियों के लिए जो बीजक की जांच कर रहे थे और क्रिस के उन इंजीनियर के लिए जिनको माल यातायात की संरचना का बिल्कुल ज्ञान नहीं था। परंतु यह समीकृत मेहनत रंग लाई और एक लंबे समय के पश्चात सफलतापूर्वक कंप्यूटर जनित बीजक को निकालने का कार्य किया गया। प्रारंभिक काल में कई अड़चनें आईं, जैसे कि कंप्यूटर का ना होना, स्टेशनों पर बिजली का ना होना, नेट की कनेक्टिविटी ना हो पाना, कर्मचारियों का प्रशिक्षित ना होना, इस प्रकार की अनेक बाधाओं को दूर करते हुए भारतीय रेलवे ने सफलतापूर्वक मानव जनित बीजकों को पूर्ण रूप से कंप्यूटर जनित बीजक में परिवर्तित कर लिया। इस दौरान कई साल तक दोनों प्रकार के बीजकों को वाणिज्य विभाग के लोग बनाते थे और लेखा विभाग में दोनों प्रकार के बीजकों की जांच होती थी तथा अन्य प्रबंधकीय रिपोर्ट आदि बनाने के लिए मानवीयकृत बीजकों की जांच के बाद डाटा को समेकित किया जाता था, जिसका कंप्यूटर जनित बीजकों से मिलान किया जाता था, जिससे कंप्यूटर जनित बीजकों में होने वाली कमियों को दूर किया जा सके।



अपरिहार्य सुझावों और सुधारों के पश्चात पूर्ण रूप से कंप्यूटर जनित बीजक निकालने का कार्य भारतीय रेलवे ने सुचारू रूप से शुरू कर दिया। अब कंप्यूटर जनित बीजक पहले से अपेक्षाकृत काफी सरल प्रक्रिया से और दक्षता पूर्वक निकलते थे। कंप्यूटर जनित बीजकों में गलतियों का अवसर बहुत कम था। परंतु हाँ, यदि कोई गलती होती थी तो वह काफी बड़े स्तर पर पूरे भारतीय रेलवे पर होती थी, क्योंकि जो भी डाटा था, वह सर्वर आधारित था और सर्वर में यदि कहीं कोई गलती रह जाती थी तो वह बड़े स्तर पर होती थी। कार्यालय में जांच के दौरान पकड़ी जाती थी और फिर उसमें सुधार का कार्य कराया जाता था। यदि कुछ रह जाता था तो उसका बड़ा प्रभाव रेलवे

मासिक लेखा में साफ परिलक्षित होता था।

प्रगतिशीलता और सरलीकरण की यात्रा का यहीं विराम नहीं हुआ। कंप्यूटराइजेशन के युग के बाद पेपरलेस युग का जन्म हुआ और भारतीय रेलवे ने अब इस कंप्यूटराइज्ड बीजक को इस रूप में जारी किया, जिसमें ग्राहक को बीजक की कोई प्रतिलिपि नहीं दी जाती थी, ना ही गंतव्य पर कोई प्रतिलिपि जाती थी, सब कुछ ओटीपी के आधार पर पेपरलेस कर दिया गया।

- जया अग्रवाल

सेवानिवृत्त व.अनु.अधि.

यातायात लेखा कार्यालय, उ.रे., नई दिल्ली



भारत पर किसी का दबाब नहीं है

भारत पर किसी का दबाब नहीं है
भारत अपने रुबाब पर है
तुम कम न आंको ताकत इसकी
भारत पूरे शबाब पर है।

बात चाहे शांति की हो
या युद्ध में धूल चटाने की
तुम हमें लड़ने को न उकसाओ
सबकी नजर भारत के जबाब पर है।

दुनिया ने मान लिया लोहा हमारा
अमेरिका, ईयू, रशिया या चाइना
तुम भी घुटने टेककर बैठ जाओ
वर्ना भारत का मूड खराब पर है।

बात चाहे हिमालय की हो
या आकाश में अठखेलियों की
तुम अपनी सरहदें बचाओ
भारत की नजर तुम्हारे कबाब पर है।

भारत के रंगों में कूटनीति भरी है
जरूरत पड़ने पर भारत कूट भी देगा
तुम अपनी मंशाएं साफ बताओ
भारत में उदारता बेहिसाब पर है।

अभिषेक श्रीवास्तव
वरिष्ठ अनुभाग इंजीनियर,
विद्युत् लोको शेड, झांसी



महादेवी : छायावाद की चार स्तंभों में एक

महादेवी जी 'पीड़ा की गायिका' अथवा 'आधुनिक युग की मीरा' के नाम से विख्यात हैं। इनका जन्म 26 मार्च 1907 ई. को उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री गोबिंदसहाय वर्मा है और इनकी माताजी का नाम श्रीमती हेमरानी देवी है। इनके पिता विद्वान और विचारक थे और माता भक्त हृदय और धर्मपरायण महिला थी। इनका बचपन इंदौर में बीता जहां घर पर ही चित्रकला और संगीत की शिक्षा के रूप में इनकी प्रारंभिक शिक्षा पूरी हुई। तत्पश्चात् इनका विवाह नौ वर्ष की उम्र में डॉ. स्वरूप नारायण सिंह के साथ हुआ था। विवाहोपरांत इन्होंने क्रास्थवेट गर्ल्स कॉलेज, इलाहाबाद से अपनी अधूरी शिक्षा हॉस्टल में रहते हुए पूरी की। इन्होंने इलाहाबाद में पढ़ाई के दौरान ही काव्य लेखन शुरू कर दिया था। कॉलेज में सुभद्रा कुमारी चौहान के साथ उनकी घनिष्ठ मित्रता थी। महादेवी जी छायावादी युग के चार प्रमुख स्तंभों में से एक मानी जाती थी। 1932 में जब इन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संस्कृत में स्नातकोत्तर पास किया, तब तक इनके दो कविता संग्रह निहार तथा रश्मि प्रकाशित हो चुके थे। कॉलेज में रहते हुए महादेवी जी सुभद्रा कुमारी चौहान जी के साथ अपनी कविताएं साप्ताहिक पत्रिकाओं में प्रकाशन हेतु भेजती थीं। महादेवी वर्मा का कार्यक्षेत्र अत्यंत व्यापक रहा। इन्होंने लेखन, सम्पादन और शिक्षण क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया, जो अविस्मरणीय है।

महादेवी जी की साहित्यिक यात्रा

1932 में महादेवी जी ने प्रसिद्ध महिला पत्रिका 'चाँद'

का संपादन कार्य संभाला। साथ ही, इलाहाबाद स्थित प्रयाग महिला विद्यापीठ में प्राचार्या और कुलपति के पद पर रहते हुए अग्रणी भूमिका निभाई, जो उस समय महिला शिक्षा के क्षेत्र में एक क्रांतिकारी

पहल थी। महादेवी वर्मा जी ने कविता, गद्य, शिक्षा और चित्रकला जैसे विविध क्षेत्रों में नए मानदंड स्थापित किए। 1955 में इन्होंने इलाहाबाद में साहित्यकार संसद की स्थापना की और पंडित इलाचंद्र जोशी के सहयोग से साहित्यकार पत्रिका का संपादन भी संभाला, जो इस संस्था का मुखपत्र थी। इन्होंने भारत में महिला कवि सम्मेलनों की परंपरा शुरू की। ऐसा पहला अखिल भारतीय कवि सम्मेलन 15 अप्रैल 1933 को प्रयाग महिला विद्यापीठ में सुभद्रा कुमारी चौहान की अध्यक्षता में आयोजित किया

गया। बौद्ध दर्शन और महात्मा गांधी के विचारों से प्रेरित होकर जनसेवा का कार्य और भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में भी बढ़-चढ़ कर अपना योगदान देती थी। इन्होंने नैनीताल में 'मीरा मंदिर' नाम का एक बंगला बनवाया, वहाँ रहते हुए इन्होंने गाँव की शिक्षा, विशेष रूप से महिलाओं की शिक्षा और आर्थिक आत्मनिर्भरता के लिए उल्लेखनीय कार्य किए।

महादेवी वर्मा जी को हिंदी साहित्य में रहस्यवाद का प्रवर्तक भी माना जाता है। उनकी प्रसिद्ध कृति 'शृंखला की कड़ियाँ' में इन्होंने स्त्री-मुक्ति और





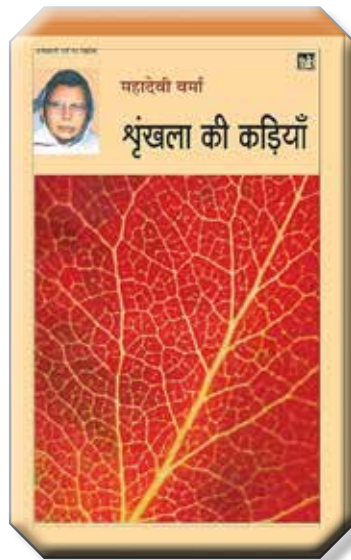
विकास के लिए जिस साहस और दृढ़ता से आवाज उठाई है, वह उन्हें महिला मुक्ति आंदोलन की प्रभावशाली लेखिका के रूप में प्रतिष्ठित करता है। 'शृंखला की कड़ियाँ' में संकलित लेख मुख्य रूप से नारी समस्या को केंद्र में रखकर लिखे गए हैं। ये लेख "चाँद" पत्र के संपादकीय के रूप में लिखे गए थे।

"अतीत के चलचित्र" में एक विधवा का चित्र महादेवी जी ने खींचा है। सेठ के पुत्र से ब्याही गई यह किशोरी बाल-विधवा होकर अपना अभिशप्त जीवन बिताती है। इसके जीवन का दर्द महादेवी का अपना दर्द बन जाता है। महादेवी जी ने एक हृदय-स्पर्शी घटना का वर्णन कर पाठक का मन झकझोर दिया - एक बार सावन की तीज के अवसर पर वे मेहंदी लगाए, ओढ़नी पहने उसके पास जाती हैं और कौतूहलवश ओढ़नी उस पर डाल देती है। "वह क्षण भर के लिए अपनी उस स्थिति को भूल गई, जिसमें ऐसे रंगीन वस्त्र वर्जित थे और नए खिलौनों से प्रसन्न बालिका के समान बेसुध मन में उसे ओढ़े, मेरी ठुड्डी पकड़कर खिलखिला पड़ी।"

इसी प्रकार, मुन्नू की माई अपने को परिवार के प्रति समर्पित कर देती है, त्याग करती है, खुद कष्ट सहती है, पर हताश नहीं होती है। बिबिया एक धोबी की लड़की है। तीन-तीन बार उसकी शादी होती है, पर हर बार उसे पति की प्रताड़ना ही सहनी पड़ती है। कभी उसे झगड़ालू पति मिलता है, तो कभी शराबी-जुआरी, तो कभी वृद्ध निरूपाय। वह अपने जीवन से संघर्ष करते-करते थक जाती है और आत्महत्या कर लेती है।

इनके सम्पूर्ण गद्य साहित्य में पीड़ा या निराशा नहीं, बल्कि एक सृजनात्मक विद्रोह, समाज में परिवर्तन की तीव्र आकांक्षा और विकास के प्रति स्वाभाविक जुड़ाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

इन्होंने हिंदी कविता को ब्रजभाषा की कोमलता दी, छंदों के नये दौर को गीतों का भंडार दिया और भारतीय दर्शन को वेदना की हार्दिक स्वीकृति दी। इनके गीतों की रचना शैली और भाषा में अनोखी लय और सरलता भरी है। जैसे- "सुनहरी किरने आई, नभ में फैली लालिमा। जाग उठे सपने मेरे, हो गई नई सृष्टि की रचना।" इस पंक्ति में सूर्योदय का दृश्य साकारात्मक ऊर्जा, आशा और नई शुरुआत का प्रतीक है। यह आशय देती है कि जैसे सूर्य की किरणें पूरे वातावरण में फैलती हैं, वैसे ही हमारे विचार और सपने भी जीवन में उजागर हो सकते हैं।



साथ ही, इन्होंने प्रतीकों और बिंबों का ऐसा सुंदर और स्वाभाविक प्रयोग किया है, जिनसे सामाजिक जीवन की गहरी परतों को छूने वाली तीव्र दृष्टि, नारी जीवन के वैषम्य और शोषण को तीखेपन से आंकने वाली विचारधारा और निम्न वर्ग के निरीह, साधनहीन प्राणियों का अनूठा चित्र पहली बार हिंदी साहित्य में देखने को मिलता है। जैसे- 'तप रे मधुर-मधुर मन, विश्व-वेदना में तप प्रतिपल, तेरी मधुर मुक्ति ही बंधन, गंध हीन तू गंध युक्त बना।' यहां यह भाव प्रकट हो रहा है कि जीवन में किस तरह अचानक और

अनजाने में जटिलताएँ, उलझनें उत्पन्न होती हैं, और ये उलझनें प्राणों या चेतना के भीतर भी असमंजस और परेशानियाँ ला देती हैं।

छायावादी काव्य को जहाँ प्रसाद ने प्रकृतित्व दिया, निराला ने उसमें मुक्त छंद की अवतारणा की और पंत ने उसे सुकोमल कला प्रदान की, वहाँ छायावाद के कलेवर में प्राण-प्रतिष्ठा करने का गौरव महादेवी जी को ही प्राप्त है।

- अविनाश प्रसाद
वरिष्ठ अनुवाद अधिकारी
रेल मंत्रालय, रेलवे बोर्ड



परिवार में पिता का महत्व

पिता धर्मः पिता स्वर्गः पिता हि परमं तपः।

पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः॥

-(पद्मपुराण)

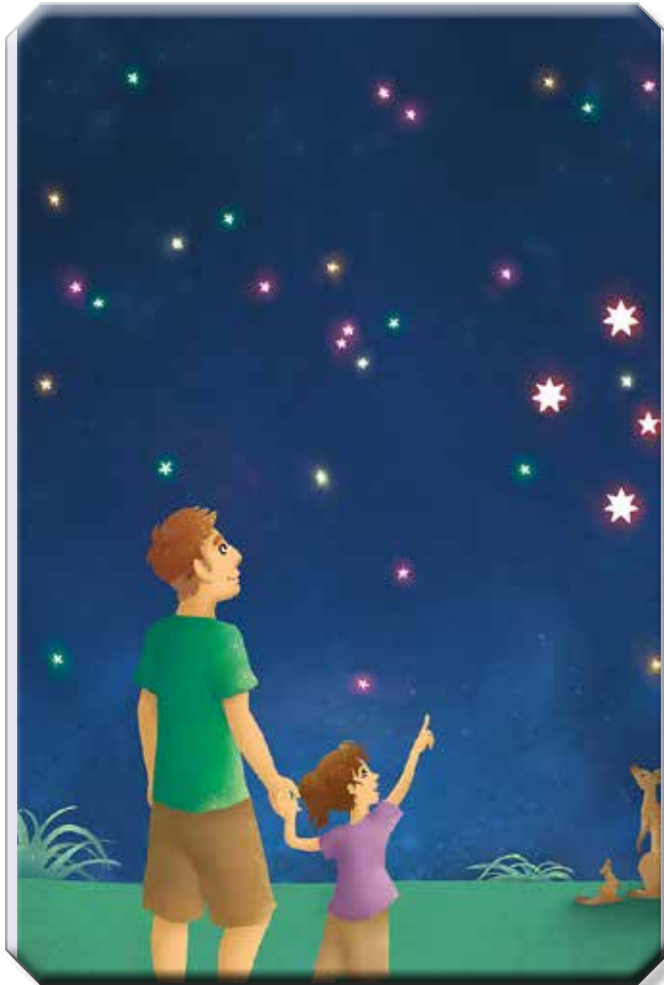


अर्थात् पिता ही धर्म है, पिता ही स्वर्ग है और पिता ही सबसे बड़ा तप है। पिता के प्रसन्न होने पर सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं। पद्मपुराण के इस श्लोक में पिता के सर्वोच्च स्थान और उनके प्रति आदर-सम्मान के महत्व को बहुत ही सुंदर ढंग से दर्शाया गया है जिसे हम सभी को समझने की आवश्यकता है।

मध्यम वर्गीय परिवार समाज की रीढ़ माना जाता है। इस वर्ग के लोग सीमित साधनों में अपने परिवार की आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रयास करते हैं। ऐसे परिवार में पिता का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। वह केवल घर का मुखिया ही नहीं, बल्कि परिवार की शक्ति, सुरक्षा और मार्गदर्शक भी होता है। पिता अपने परिवार के सुख-दुख का ध्यान रखते हुए हर परिस्थिति में परिवार को संभालने का प्रयास करता है। अमेरिकी दार्शनिक बिली ग्राहम ने सही कहा था कि, 'एक अच्छा पिता हमारे समाज की सबसे अनमोल संपत्तियों में से

एक है, जिसकी अक्सर अनदेखी की जाती है, प्रशंसा नहीं की जाती है और न ही उस पर ध्यान दिया जाता है।'

परिवार में पिता प्रायः कम आय में पूरे परिवार की जरूरतों को पूरा करता है। वह दिन-रात मेहनत करके बच्चों की पढ़ाई, भोजन, कपड़े और अन्य आवश्यकताओं की व्यवस्था करता है। कई बार वह अपनी इच्छाओं का त्याग कर परिवार की खुशियों को प्राथमिकता देता है। उसके त्याग और संघर्ष के कारण ही परिवार सम्मानपूर्वक जीवन जी पाता है। पिता बच्चों के लिए प्रेरणा का स्रोत होता है। वह अपने अनुभवों से बच्चों को सही और गलत का ज्ञान देता है। अनुशासन, मेहनत, ईमानदारी और जिम्मेदारी जैसे गुण बच्चे अपने पिता से ही सीखते हैं। जब बच्चे कठिनाइयों में पड़ते हैं, तब पिता उनका मार्गदर्शन करते हैं और उन्हें सही रास्ता दिखाते हैं। पिता का स्नेह भले ही मां की तरह खुलकर दिखाई न दे, लेकिन





उनके मन में अपने बच्चों के लिए अपार प्रेम होता है।

मध्यम वर्गीय परिवार में आर्थिक समस्याएं अक्सर बनी रहती हैं। ऐसे समय में पिता धैर्य और साहस के साथ परिवार को संभालते हैं। वह हर चुनौती का सामना करके अपने परिवार को सुरक्षित रखने का प्रयास करते हैं। परिवार के भविष्य को बेहतर बनाने के लिए वह कठिन परिश्रम करते हैं और अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा दिलाने का सपना देखते हैं। पिता परिवार के सम्मान और एकता को बनाए रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वह परिवार के सभी सदस्यों को साथ लेकर चलते हैं और घर में प्रेम तथा अनुशासन का वातावरण बनाए रखते हैं। उनके निर्णय और सलाह परिवार को सही दिशा प्रदान करते हैं। एक जिम्मेदार पिता अपने बच्चों के उज्ज्वल भविष्य के लिए हमेशा चिंतित रहता है। आज के आधुनिक समय में भी पिता का महत्व कम नहीं हुआ है। चाहे परिस्थितियां कितनी भी बदल जाएं, पिता परिवार की मजबूती का आधार बने रहते हैं। उनके बिना परिवार अधूरा लगता है। पिता का योगदान शब्दों में व्यक्त करना कठिन है, क्योंकि उनका पूरा जीवन अपने परिवार के लिए समर्पित होता है।

अंत में कहा जा सकता है कि मध्यम वर्गीय परिवार में पिता का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण और सम्माननीय है। वह परिवार की नींव होते हैं, जिनके त्याग, मेहनत और प्रेम से परिवार खुशहाल बनता है। हमें अपने पिता का सम्मान करना चाहिए और उनके संघर्षों को समझने का प्रयास करना चाहिए।

-अभिषेक कुमार प्रसाद

कनिष्ठ अनुवादक, पूर्व रेलवे, सियालदह

कर्तव्य परायणता



लक्ष्य सदा उनको ही मिलता, जो कर्तव्य निभाते हैं,
देवों को दुर्लभ जीवन का, वे आनन्द उठाते हैं।
कर्मशील बनकर खेतों में, बीज कृषक जब बोता है,
पोषण पाकर उत्पादन तब, कई गुना तक होता है,
जो करते पुरुषार्थ प्रथमतः, वही सुखी बन पाते हैं।
लक्ष्य सदा उनको ही मिलता, जो कर्तव्य निभाते हैं।
जब परमार्थ भाव से प्रेरित, कर्तव्यों का पथ होगा,
औरों का हित करता जीवन, श्रेष्ठ स्वार्थ में रत होगा,
ऐसे व्यक्ति अपरिचित जन के, भी अपने बन जाते हैं।
लक्ष्य सदा उनको ही मिलता, जो कर्तव्य निभाते हैं।
प्रकृति सतत परमार्थ भाव से, निज कर्तव्य निभाती है,
रहे प्रफुल्लित जिससे वसुधा, वह रसधार बहाती है,
श्रेष्ठ व्यक्ति अपने अन्तः में, ये ही गुण विकसाते हैं।
लक्ष्य सदा उनको ही मिलता, जो कर्तव्य निभाते हैं।
विपदाओं में गीध गिलहरी, ने कर्तव्य निभाया था,
फलस्वरूप भगवान राम ने, निज हाथों सहलाया था,
धर्म निभाने वालों पर ही, देव कृपा बरसाते हैं।
लक्ष्य सदा उनको ही मिलता, जो कर्तव्य निभाते हैं।

श्यामलाल शर्मा

शान्तिकुंज हरिद्वार, उत्तराखंड

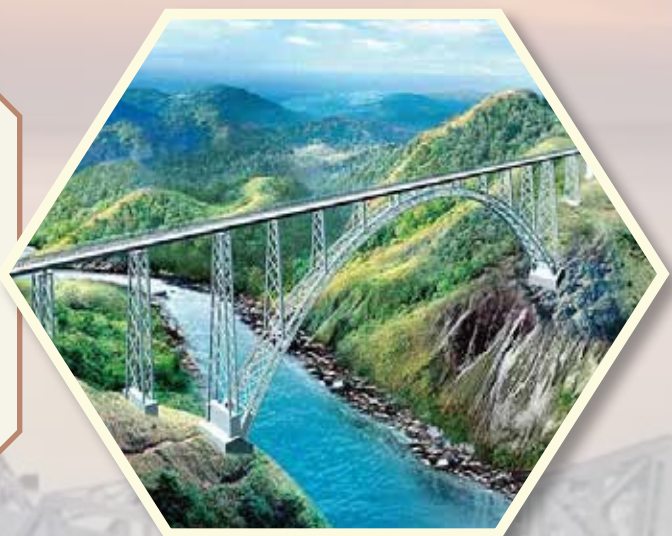
संसदीय राजभाषा समिति की दूसरी उपसमिति द्वारा रेल कार्यालयों के निरीक्षण की झलकियां





अंजी खंड पुल जम्मू और कश्मीर में अंजी नदी (चिनाब नदी की सहायक नदी) पर स्थित भारत का पहला केबल के सहारे टिकने वाला रेलवे पुल है। यह पुल उधमपुर-श्रीनगर-बारामूला रेल लिंक का हिस्सा है, जो कटरा और रियासी को जोड़ता है। यह पुल 213 किमी/घंटा की रफ्तार से चलने वाली तेज हवाओं और भूकंप का सामना करने में सक्षम है।

चिनाब ब्रिज जम्मू और कश्मीर के रियासी जिले में चिनाब नदी पर स्थित दुनिया का सबसे ऊंचा रेलवे आर्च ब्रिज है। यह इंजीनियरिंग का एक शानदार नमूना है और उधमपुर-श्रीनगर-बारामूला रेल लिंक परियोजना का एक प्रमुख हिस्सा है। नदी तल से इस पुल की ऊंचाई 359 मीटर है, जो इसे पेरिस के प्रसिद्ध एफिल टावर से भी 35 मीटर ऊंचा बनाता है। इस पुल की कुल लंबाई 1315 मीटर है और इसके निर्माण में करीब 28000 मीट्रिक टन स्टील का उपयोग किया गया है।



मिजोरम में स्थित भारतीय रेलवे का एक शानदार इंजीनियरिंग चमत्कार है। यह भारत का सबसे ऊंचा और दुनिया का दूसरा सबसे ऊंचा पियर (खंभे वाला) रेलवे पुल है, जो कुरुंग नदी पर बना है। इस पुल का सबसे ऊंचा खंभा 114 मीटर (लगभग 374 फीट) ऊंचा है। यह खंभा दिल्ली की ऐतिहासिक कुतुब मीनार (72.5 मीटर) से भी लगभग 42 मीटर अधिक ऊंचा है।



रेल मंत्रालय (रेलवे बोर्ड), नई दिल्ली